गेहूँ एवं जौ संदेश

वर्ष 5 अंक 1 जनवरी-जून, 2016

गेहूँ में जिंक एक महत्त्वपूर्ण पोषक तत्त्व

चरण सिंह, अमित शर्मा, अनिता मीणा, ज्ञानेन्द्र सिंह एवं अरूण गुप्ता

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत की ज्यादातर जनसंख्या का मुख्य भोजन गेहूँ एवं धान है। मानव शरीर को प्रतिदिन जिंक की औसत जरुरत 33 मिलीग्राम होती है। जबकि गेहूँ की उन्नत किस्मों में औसत जिंक की मात्रा 25–30 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम तक ही मानव शरीर द्वारा ग्रहण की जाती है और शेष मात्रा ह्रास द्वारा बेकार चली जाती है। वर्तमान में गेहूँ की प्रजातियों को देखते हुए, अगर एक व्यक्ति 400 ग्राम गेहूँ का आटा, रोटी के रुप में खाता है तो, उसके शरीर में 10 मिली ग्राम प्रति किलोग्राम जिंक अलग से बढ़ाने की आवश्यकता है अर्थात् मानव शरीर में जिंक की आवश्यकता को पूरा करने के लिए वर्तमान गेहूँ की उन्नत किस्मों में जिंक की मात्रा 8–10 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम बढ़ाने की आवश्यकता है जो कि अलग–अलग तरीकों से गेहूँ की नई एवं प्रवर्तित किस्मों में बढ़ाई जा सकती है। उदाहरण के तौर पर, अगर हम बात करें, गेहूँ की एक प्रचलित किस्म पी.बी.डब्ल्यू. 343 की, जिसे किसानों द्वारा लगातार करीब 10 सालों तक 10 मिलियन हैक्टेयर से भी ज्यादा क्षेत्र में उगाया गया, उसमें भी जिंक की औसत मात्रा 25 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम आंकी गई। जबकि शरीर की आवश्यकता के लिए 33 मिलीग्राम होनी चाहिए। अतः इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि हमें मानव शरीर में जिंक की आवश्यकता को देखते हुए, करीब 8–10 मिलीग्राम जिंक प्रति किलोग्राम गेहूँ में बढ़ाने की आवश्यकता है।

गेहूँ में जिंक तत्त्व बढ़ाने की वैज्ञानिक तकनीक : अब प्रश्न उठता है कि गेहूँ में जिंक की मात्रा को कैसे बढ़ाया जाए ? वैज्ञानिकों द्वारा इसके लिए बहुत सारी विधियाँ अपनाई गई हैं, जिनमें से कुछ मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं।

1. आनुवंशिक बायोफोर्टिफिकेशन : यह बहुत ही उपयोगी विधि है। गेहूँ में जिंक की वृद्धि हेतु कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परियोजनाएं चल रही हैं। जिनमें शुष्क पदार्थ के आधार पर गेहूँ में 38 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम तक जिंक बढ़ाने का कार्यक्रम जारी है। इस विधि द्वारा गेहूँ की जंगली प्रजातियों जैसे ट्रिटीकम मोनोकॉकम, ट्रिटीकम बियोटिकम एवं ट्रिटीकम डाईकॉकम (जिनमें जिंक 14 से 190 मिलीग्राम तक पाया जाता है) का प्रयोग करके गेहूँ की प्रचलित किस्मों में जिंक की मात्रा को बढ़ाया जा रहा है। ये गेहूँ की द्विगुणी प्रजातियाँ हैं और इनके गुणों को विकसित किस्मों में स्थानांतरित किया जा रहा है। गेहूँ (चपाती गेहूँ) षट्गुणित होती है और इन जीनोम के असुंतलन की वजह से जिंक का स्थानांतरण करना बहुत मुश्किल कार्य है, लेकिन

ब्रिज–क्रॉस के माध्यम से यह कार्य आसानी से किया जा सकता है और ट्रिटिकम ड्यूरम गेहूँ की प्रजाति का उपयोग ब्रिज–क्रॉस के रुप में किया जा सकता है।

2. सस्य बायोफोर्टिफिकेशन : बायोफोर्टिफिकेशन में पौधे, मृदा से जिंक ग्रहण करके, दाने में संचित कर लेते हैं और इस विधि से जिंक बढ़ाने के लिए मृदा में पर्याप्त जिंक होना आवश्यक है। इस विधि द्वारा गेहूँ के खेत में जिंक डालकर या खड़ी फसल में जिंक घोल का छिड़काव करके गेहूँ के दानों में जिंक की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। यह विधि उन क्षेत्रों के लिए अधिक उपयोगी है जहाँ पर पैदावार बढ़ाने के लिए फसल में खनिज उर्वरकों का इस्तेमाल किया जाता है तथा उर्वरक बनाते या वितरित करते समय जिंक मिलाया जा सकता है। पानी में जिंक का घोल बनाकर, स्प्रे करने से भी गेहूँ के दानों में जिंक की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

तालिका : भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के लिए गेहूँ की मुख्य प्रजातियाँ एवं उनमें जिंक की मात्रा

क्रमांक	गेहूँ की प्रजातियाँ	जिंक की मात्रा (मिलीग्राम/किलोग्राम)
1.	एच.डी. 2967	35.9
2.	डब्ल्यू.एच. 1105	37.5
3.	डी.बी.ड़ब्ल्यू. 88	33.0
4.	एच.डी. 3086	33.1

3. आनुवंशिकी बदलाव से : इस विधि में 'जिप्प' ट्रांसक्रिप्सन फैक्टर के ओवर एक्सप्रेशन से दाने में जिंक की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। उदाहरणतः जौ में एरेबीडोपसिस की जिंक बढ़ाने वाली जीन 'जिप्प' (जिंक प्रोमोटर फैमिली प्रोटीन) फैमिली को बढावा देकर जिंक की मात्रा बढ़ाई गई है। जौ में इस विधि से वैज्ञानिकों द्वारा 31–85 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम तक जिंक की मात्रा बढ़ाई गई है।

4. जी.पी.सी.बी.1 जीन के घनात्मक साहचर्य द्वारा : गेहूँ में प्रोटीन को बढ़ाने हेतु जी.पी.सी.बी.1 बहुत उपयोगी जीन है। मुख्यतः यह जीन गेहूँ की प्रजाति ग्लूपरो में पाया जाता है और इस जीन के होने से, प्रोटीन के साथ–साथ गेहूँ में जिंक की मात्रा भी बढ़ जाती है, क्योंकि इस जीन का, जिंक के साथ, घनात्मक साहचर्य है। अतः इस जीन की सहायता से हम गेहूँ में प्रोटीन के साथ–साथ जिंक की मात्रा को भी बढ़ा सकते हैं।

सारांश : मानव शरीर के विकास के लिए पौष्टिक भोजन अति आवश्यक है। आज हम खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के साथ–साथ पोषण सुरक्षा पर भी ध्यान दे रहे हैं। अब हम पौष्टिक खाद्यान्न और यहां तक कि जैविक खाद्यान्न की भी बात करते हैं। गेहूँ की जिंक समृद्ध प्रजातियों का विकास करके, हम उन जनसंख्या वाले क्षेत्रों की जिंक की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं, जिनका प्रमुख भोजन गेहूँ एवं धान है। इस तरह से हम देश में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में जिंक की कमी से व्याप्त कुपोषण को समाप्त कर आने वाले समय में जनमानस के लिए पोषण सुरक्षा की गारंटी की उम्मीद कर सकते हैं।

हरी खाद से बढ़ाएं मृदा उर्वरता

दिनेश जीनगर, सम्पत लाल मून्दड़ा[1], सीमा सेपट एवं नवल सेपट

सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[1]राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए दलहनी अथवा गैर–दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर जुताई करके मृदा में अपघटन के लिए दबाना ही हरी खाद देना है। प्राचीन काल से ही हरी खाद से मृदा को उपजाऊ बनाने का प्रचलन हमारे देश में है। हमारे देश के पौराणिक ग्रन्थों में हरी खाद के प्रयोग का वर्णन मिलता है। बढ़ते ऊर्जा संकट, उर्वरकों के मूल्यों में वृद्धि तथा गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट जैसे अन्य कार्बनिक स्रोतों की सीमित आपूर्ति से हरी खाद के प्रयोग का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

हरी खाद बनाने के लिए फसल का चुनाव

हरी खाद के लिए उगाई जाने वाली फसल का चुनाव भूमि, जलवायु तथा उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इस दृष्टि से फसल में निम्नलिखित गुणों का होना जरूरी है।

1. फसल शीघ्र वृद्धि करने वाली हो।
2. हरी खाद के लिए कोमल तनों वाली फसलों का चुनाव करना चाहिए।
3. पौधों में अधिक शाखाएं और पत्तियाँ हों ताकि अधिक–से–अधिक जीवांश तथा पोषक तत्व मृदा में मिलाए जा सकें।
4. पौधों में मूसला एवं गहराई तक जाने वाली जड़ें हों ताकि गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण करके उन्हें हरी खाद के रूप में ऊपरी सतह में मिलाया जा सके।
5. फसल दलहनी हो क्योंकि जड़ों में सहजीवी जीवाणु ग्रन्थियाँ बनाकर वातावरण की मुक्त नाइट्रोजन को यौगिकीकरण द्वारा पौधों के लिए सुलभ बना देते हैं।
6. फसल सूखा रोधी होने के साथ–साथ जल मग्नता को भी सहन कर सकती हो।

हरी खाद के लिए प्रयुक्त प्रमुख फसलें

1. **सनई:** यह अच्छे जल निकास वाली बलुई अथवा दोमट मृदाओं के लिए उत्तम दलहनी हरी खाद की फसल है। इसकी बुआई मई से जुलाई तक पानी की उपलब्धता के अनुसार की जा सकती है। बुवाई के 45–60 दिन बाद पहले फसल को पाटा लगाकर भूमि पर आड़ा गिरा दिया जाता है फिर मिट्टी पलटने वाले डिस्क हैरो या मोल्ड बोर्ड हल चलाकर फसल को मिट्टी में दबा दिया जाता है। मिट्टी में दबाने के बाद सड़ते समय यदि वर्षा न हो तथा मिट्टी में नमी कम हो जाए तो एक सिंचाई कर देनी चाहिए। यह 20–30 टन हरा पदार्थ एवं 85–125 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर देने की क्षमता रखती है।

2. **ढैंचा:** यह एक दलहनी फसल है जो सभी प्रकार की जलवायु तथा मृदा अवस्थाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। एक हैक्टर क्षेत्र में 20–25 टन हरा पदार्थ देकर 85–105 कि.ग्रा. नाइट्रोजन मृदा को प्राप्त हो सकती है।

3. **ग्वार:** खरीफ में बोई जाने वाली दलहनी तथा मूसला जड़ वाली फसल है। हरी खाद हेतु 30–35 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त है। यह प्रति हैक्टर 20–25 टन हरा पदार्थ तथा 70–85 कि.ग्रा. नाइट्रोजन देने की क्षमता रखती है।

4. **मूंग और उड़द:** ये दोनों दलहनी फसलें हैं जिन्हें अच्छे जल–निकास वाली हल्की बलुई या दोमट मृदाओं में खरीफ अथवा जायद में उगाया जा सकता है। इसलिए फलियाँ तोड़ने के बाद इनको खेत में पलट कर हरी खाद के लिए उपयोग में लाया जाता है। ये फसलें अपेक्षाकृत कम हरा पदार्थ उत्पन्न करने की क्षमता रखती हैं (मूंग 8–10 टन तथा उड़द 10–12 टन)।

5. **चँवला (लोबिया):** यह फसल कई प्रदेशों में सिंचित क्षेत्रों में विशेष रूप से हरे चारे तथा आंशिक रूप से हरी खाद के लिए उगाई जाती है। एक हैक्टर क्षेत्र में 35–40 कि.ग्रा. बीज बोकर 15–18 टन हरा पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। क्षारीय–लवणीय भूमियों के लिए यह फसल उपयुक्त नहीं है।

6. **गैर–दलहनी हरी खाद की फसलें:** भारतीय मृदाओं में नाइट्रोजन की व्यापक कमी है। इसलिए हरी खाद के प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करना है। यही कारण है कि भारत में गैर–दलहनी फसलों का उपयोग हरी खाद के लिए नगण्य है। लेकिन जिन क्षेत्रों में हरी खाद का प्रयोग प्रमुख रूप से मृदा में जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिए किया जाता हो, वहाँ गैर–दलहनी फसलों (सरसों, मक्का, ज्वार आदि) का उपयोग हरी खाद के लिए कर सकते हैं।

हरी खाद की गुणवत्ता बढ़ाने के उपाय

हरी खाद की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- **उपयुक्त फसल का चुनाव:** हरी खाद की वांछित गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए जलवायु एवं मृदा–दशाओं के आधार पर उपयुक्त फसल का चुनाव आवश्यक होता है। उदाहरण के तौर पर जलमग्न मृदा–दशाओं एवं क्षारीय–लवणीय मृदाओं में ढैंचा की हरी खाद अधिक उपयोगी होती है। सामान्य मृदाओं में सनई एवं ढैंचा दोनों फसलों से अच्छी गुणवत्ता प्राप्त की जा सकती है।
- **खेत में हरी खाद की जुताई का समय:** अधिकतम हरा पदार्थ प्राप्त करने के लिए फसलों की पलटाई या जुताई फूल आने के समय की जाती है। यह अवस्था बुवाई के 6 से 9 सप्ताह बाद प्राप्त होती है।
- **हरी खाद के प्रयोग के बाद अगली फसल की बुवाई:** जिन क्षेत्रों में कम वर्षा होती हो वहाँ अगली फसल की बुवाई हरी खाद की पलटाई के तत्काल बाद नहीं करते हैं। सिंचाई की सुविधा होने पर पलटाई के बाद अपघटन के लिए आवश्यक समय को कम किया जा सकता है।
- **उर्वरकों का प्रयोग:** हरी खाद की दलहनी फसलों की बुवाई करते समय फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों का प्रयोग करने से हरी खाद की गुणवत्ता बढ़ जाती है। फॉस्फोरस के प्रयोग से दलहनी फसलों में हरे पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप अगली फसल को नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है।

गेहूँ–धान फसल पद्धति में गुलाबी तना छेदक का बढ़ता प्रकोप एवं रोकथाम

सुभाष कटारे, पूनम जसरोटिया, अनिल खिप्पल, सत्यवीर सिंह एवं एम.एस. सहारण

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गुलाबी तना छेदक कीट, खाद्यान्न फसलों विशेषकर धान का एक सर्वभक्षी प्रमुख कीट है। हाल के वर्षों में इसका नुकसान गेहूँ एवं मक्का की फसलों में भी अधिक देखा गया है। भारत के उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की धान–गेहूँ फसल प्रणाली में इस कीट का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। इसके मुख्य कारण जलवायु परिवर्तन, हल्की सर्दी एवं धान की कटाई और गेहूँ की फसल की बुवाई के बीच समय के अंतर में कमी विशेष हैं। कीट का प्रकोप उन खेतों में अधिक होता है जहाँ फसल शून्य जुताई (जीरो टिलेज) विधि से बोई जाती है। इसके साथ ही फसल में नत्रजन का अधिक प्रयोग, पौधे से पौधे की दूरी, कीट प्रतिरोधी प्रजातियों में कमी, कीटनाशक दवाओं का अधिक प्रयोग और इसके द्वारा मित्र/प्राकृतिक कीटों की संख्या में कमी एवं सुषुप्तावस्था में पड़ी इल्ली को नष्ट करने के लिए किसी भी शस्य क्रिया को न अपनाना इत्यादि कारण,

इस कीट के प्रकोप को बढ़ावा देने में सहायक हो रहे हैं।

वितरण : कीट का प्रकोप धान, गेहूँ के अतिरिक्त मक्का, ज्वार, गन्ना, बाजरा एवं अन्य घास कुल की फसलों में होता है।

जीवन चक्र : इस कीट की वयस्क मादा रात के समय पौधों पर गुच्छों में 25–30 अंडे देती है। अंडे गोल एवं पीले हरे रंग के होते हैं। वयस्क कीट छोटे और धान के पुआल के रंग के होते हैं तथा पंखों का फैलाव 25 मि.मी. होता है। इस कीट का वयस्क पतंगा हवा के साथ 3 मील की दूरी एक बार में तय कर सकता है। इल्ली अंडों में से एक सप्ताह से दस दिन में निकल कर पौधों के तने में चली जाती है। इल्ली गुलाबी रंग एवं बिना धारियों वाली होती हैं तथा उसकी 6–7 अवस्थाएं होती है। एक पूर्ण विकसित इल्ली गोलाकार और सिर भूरे लाल रंग एवं लंबाई 20–25 मि.मी. होती है। गर्मी के समय में इल्ली का जीवन काल 3–6 सप्ताह का होता है और सर्दी के समय में यह और बढ़ जाता है। इसके पश्चात् इल्ली पौधों के तने में प्यूपा अवस्था में रहती है। प्यूपा अवस्था 8–10 दिन तक रहती है। तत्पश्चात् वयस्क पतंगा बाहर निकलता है। सामान्यतः जीवन–चक्र 40–70 दिनों में पूरा हो जाता है लेकिन जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल न होने पर यह बढ़ सकता है। एक साल में कीट की 4–6 पीढ़ियाँ होती हैं।

क्षति के लक्षण : गेहूँ की फसल को मुख्य रूप से नुकसान इल्ली द्वारा होता है। इल्ली तना में घुसकर ऊतकों को खाती है। इसके कारण फसल की प्रारंभिक अवस्था में ही तने में डेड हार्ट बन जाते हैं। प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते हैं जिन्हें आसानी से उखाड़ा जा सकता है। पौधों को उखाड़ने पर इनके नीचे के सिरे पर कीट के मल के साथ गुलाबी रंग की इल्ली देखी जा सकती है। कीट का प्रकोप फसल पर बाद की अवस्था में होने पर पौधों के टिलरों में डेड हार्ट बनकर पौधा मर जाता है अथवा पौधों की बालियाँ सफेद हो जाती हैं जिन्हें आसानी से खींचा जा सकता है।

ऋतु–संबंधी उपस्थिति: बदलते मौसम में तापमान बढ़ने के कारण इस कीट का प्रकोप नवम्बर के अंतिम सप्ताह एवं दिसंबर के शुरू में गेहूँ की फसल में दिखना शुरु हो जाता है। दिसम्बर माह में इसकी इल्ली धान के अवशेषों में तने के अंदर भूमि के ऊपरी सतह पर सुषुप्तावस्था में रहती है। इस कीट का नुकसान फसल की किसी भी अवस्था पर हो सकता है, परन्तु इसकी सक्रियता जनवरी–फरवरी माह में तापमान कम होने के कारण कम हो जाती है और मार्च माह में पुनः बढ़ने लगती है। फरवरी माह में अगर मृदा तापमान 20° डिग्री से अधिक होने लगता है तो इल्ली प्यूपा अवस्था में चली जाती है।

कीट प्रबंधन

1. फसल में स्वतः उगे हुए पौधों, फसल अवशेषों और खरपतवारों को नष्ट करें।
2. समय–समय पर सिंचाई के स्तर को बढ़ा दें ताकि निचले हिस्सों में जमा अंडे पानी में डूब जाएं।
3. कीट ग्रसित पौधों को निकालकर नष्ट कर दें।
4. खेत में वयस्क पतंगों की निगरानी के लिए फीरोमोन ट्रैप @ 4–5 प्रति एकड़ लगायें।
5. नाइट्रोजन उर्वरक को सही मात्रा एवं समय पर दें अथवा विभाजित करके दें।
6. प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण करें, जैसे एपेंटेलेस, टीलेनोमस, मिरिड बग, ब्रेकोन स्पी. कॉसिनेलिड्स, स्पाइडर्स, हायमेनोप्टेरा एवं डीप्तेरा परसितोइड्स।
7. पक्षियों के बैठने के लिए खेत में जगह–जगह टी (T) आकार की 10 खूँटी प्रति एकड़ लगाना चाहिए।
8. यदि फसल में कीट का प्रकोप ज्यादा हो तो ही डायक्लोरोवोस 76 % ई.सी. 112.8–150.4 मिली दवा प्रति एकड़ 200–400 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें।

(स्रोत –आई.पी.एम. फॉर व्हीट –2014)

जौ की खेती : फायदे, अवरोध एवं संभावनाएं

अजीत सिंह खरब, चुनी लाल एवं विष्णु कुमार
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

अवसर

- जौ की खेती विभिन्न परिस्थितियों में की जा सकती है क्योंकि यह विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल है।
- कम खाद एवं पानी में अच्छी पैदावार।
- क्षारीय एवं लवणीय भूमि में अच्छी पैदावार।
- कम उपजाऊ भूमि में अच्छी पैदावार।
- बहुउपयोगी जैसे की खाद्य, माल्ट, चारा आदि।
- जौ मनुष्य में कुछ रोगों को दूर रखने में सहायक : मधुमेह रोग की रोकथाम में तथा कोलेस्ट्रॉल को कम करने मे सहायक है। गेहूँ के दानों के साथ 20–25 % जौ के दानों का आटा नियमित रूप से खाने से इन रोगों को कम करने में सहायता मिलती है।

- सभी परिस्थितियों के लिए तथा सभी प्रकार के उपयोग के लिए बहुत सी अच्छी पैदावार वाली जौ की प्रजातियाँ उपलब्ध हैं।
- भारत में माल्ट की मांग बढ़ रही है और यह चीन के बाद दूसरा एशिया का सबसे अधिक माल्ट बनाने वाला देश है इसलिए मांग अच्छी रहने का अनुमान है।
- देश में आमदनी बढ़ने, शहरीकरण तथा नाश्ता पदार्थ बढ़ने में जौ के समावेश की मांग बढ़ने का अनुमान है।
- भारतीय माल्ट जौ प्रजातियों की गुणवत्ता, अन्तर्राष्ट्रीय माल्ट प्रजातियों के बराबर है।
- अनुबंध खेती के लिए विकल्प, जिससे की अच्छी गुणवत्ता वाला माल्ट जौ पैदा कर सकते हैं।
- शुष्क क्षेत्रों में हरे चारे एवं दाने के लिए जौ की खेती कर सकते हैं। इसके लिए प्रजातियाँ उपलब्ध हैं।
- जौ में व्यापार के भी अवसर हैं। खाद्य जौ की अरब देशों में तथा माल्ट जौ की विकसित देशों जैसे जापान, चीन आदि में मांग के अवसर हैं।
- जौ की उन्नत प्रजातियाँ बिमारियों के प्रति प्रतिरोधक हैं।

अवरोध

- जौ की खरीद एवं प्राप्ति की प्रणाली के लिए उचित व्यवस्था न के बराबर है। जौ का बाजार मूल्य पैदावार लागत को ध्यान में रखकर बढ़ाना तथा माल्ट प्रजाति दानों का बाजार मूल्य खाद्य जौ से अधिक रखना।
- उन्नत किस्म का बीज किसान तक पहुँचाना। जौ के अच्छे बीज की वितरण प्रणाली नहीं है। अधिक उत्पादन के लिए उन्नत प्रजाति का प्रमाणित बीज किसान तक पहुंचाएं।
- समेकित तथा सन्तुलित खाद्य एवं पानी का प्रयोग ताकि फसल गिरने से बच सके। अधिक पानी न लगाएं तथा फसल में पानी खड़ा न होने दें।
- माल्ट के लिए कम छिलका एवं कम बीटाग्लुकन वाली प्रजाति विकसित करना। स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों के लिए अधिक प्रोटीन तथा अधिक बीटाग्लुकन वाली प्रजाति विकसित करना।
- अनुबंध खेती का क्षेत्रफल बढ़ाना ताकि अच्छी गुणवत्ता वाला दाना मिल सके।
- छोटे ऑन या सॉफ्ट ऑन की प्रजाति विकसित करना ताकि पशु आसानी से जौ का चारा/भूसा खा सकें।

अन्त में जौ की पैदावार बढ़ाने तथा जौ की खेती को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता अभियान चलाएं।

जलवायु परिवर्तन में उपयुक्त है पछेती जौ की खेती

मदन लाल, योगेश कुमार, विचित्र कुमार आर्य, विष्णु कुमार एवं अजीत सिंह खरब
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

उत्तर भारत के मैदानी भागों के लिए जौ एक उपयुक्त रबी फसल है। जौ मुख्यतः लघु एवं सीमान्त किसानों की पसंद है, क्योंकि इसमें कम लागत की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त जौ क्षारीय एवं लवणीय भूमि में अन्य रबी खाद्यान्नों की अपेक्षा सरलता से उगाया जा सकता है। इसकी खेती मुख्यतः उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर में की जाती है। जौ, पानी की कम उपलब्धता वाले क्षेत्रों के लिए सर्वोत्तम फसल है।

पिछले कई वर्षों से मौसम में बदलाव, बेमौसमी वर्षा व तेज हवा चलने के कारण समय से बुआई किए गए जौ की फसल पर बुरा प्रभाव पड़ा है। क्योंकि जब जौ की फसल में दाना बनने का समय होता है उस वक्त बेमौसमी वर्षा व तेज हवा चलने से जौ की फसल गिर जाती है। जौ का तना गेहूँ के तने की अपेक्षा नरम होता है, जो वर्षा, तेज हवा व दाने के वजन से गिर जाता है। जिसके दुष्परिणाम से दाने का रंग काला पड़ जाता है, दाना पतला रह जाता है एवं बाजार में उसका सही मूल्य नहीं मिल पाता। फसल गिरने की वजह से पैदावार कम होती है और बहुत बड़ा नुकसान हो जाता है।

कई बार अधिक वर्षा की वजह से जौ के दानों में अकुंरण हो जाता है, कई बार इसी वजह से उसका विपणन मुश्किल हो जाता है। हम खेत के कुछ हिस्से में जौ की दिसम्बर के पहले सप्ताह से 25 दिसम्बर तक बुआई कर सकते हैं ताकि पछेती जौ की बुआई करने से बेमौसमी वर्षा का पछेती फसल पर कम प्रभाव पड़े। क्योंकि जब वर्षा होती है, तो उस वक्त देर से बिजाई वाली जौ की फसल छोटी होती है और इसकी लम्बाई भी कम होती है। अतः तेज हवा व वर्षा से इसके गिरने की सम्भावना कम होती है। इसका जौ की उत्पादन क्षमता और गुणवत्ता दोनों पर सीधा असर पड़ता है एवं जिससे फसल की उपज अधिक प्राप्त होती है। अन्य फसलों की अपेक्षा कम पानी, खाद एवं उर्वरकों की मांग से इसकी लागत भी कम आती है। अतः हम जलवायु परिवर्तन को देखते हुए फसल–चक्र का उचित उपयोग करके लाभ उठा सकते हैं। खासकर बासमती धान वाले क्षेत्रों में जहां कटाई देर से होती है या फिर कपास या आलू वाले खेतों में पछेती जौ की बिजाई की जा सकती है जैसे:

मूंग –चरी जवार–तोरिया–पछेती जौ
मूंग –बासमती धान–पछेती जौ
कपास–जौ

अतः हम जौ की पछेती उन्नत किस्में जैसे डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73, डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 64, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 91 से अधिक उत्पादन लेकर अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

स्टे ग्रीनः गेहूँ में उष्ण एवं सूखा सहिष्णुता का एक संकेतक

आशुतोष श्रीवास्तव, रिंकी, के. एन. तिवारी, बृज किशोर मीणा एवं सिन्धु सरीन
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

पर्णहरित पौधों मे प्रकाश संश्लेषण का कार्य करता है जिसमें सूर्य से प्राप्त सौर उर्जा को पर्णहरित के द्वारा जैव रसायन उर्जा के रुप में परिवर्तित किया जाता है, जो कि पौधों की एक विशेष महत्ता है। संसार में सभी जीव इसी उर्जा को विभिन्न रुपों में प्राप्त करते हैं।

पर्णहरित के अधिक समय तक जीवित रहने को अंग्रेजी भाषा में स्टे ग्रीन कहा जाता है। अतः पौधों में यह गुण तनाव आदि की स्थिति में एक महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। जितने समय तक तनाव की स्थिति में पर्णहरित पौधों में जीवित रहेगा उसमें प्रकाश संश्लेषण भी होता रहेगा जो कि पौधों को भोजन प्रदान करता है। इसी भोजन को पौधे दानों के भराव व पकने तक उपयोग करते हैं। अतः स्टे ग्रीन का आकलन विभिन्न जीनरुपों में करके एक अच्छे जीन प्रारुप का चयन किया जा सकता है।

अधिक अनाज उपज के साथ स्टे ग्रीन की विशेषता का सकारात्मक सम्बन्ध कई फसलों के साथ पाया गया है। कठिया गेहूँ में, एक उत्परिवर्ती पौधे की पत्ती का अधिक क्षेत्रफल, दाने बनने की अवधि एवं दर और प्रकाश संश्लेषण क्षमता की अवधि के साथ सम्बन्ध पाया गया है।

दानों की परिपक्वता के दौरान, पत्तियों में पर्णहरित का बने रहना का कटाई सूचकांक एवं जल उपयोग दक्षता के साथ सकारात्मक सम्बन्ध देखा गया है। तनाव की स्थिति में गेहूँ की उत्पादकता का स्टे ग्रीन के साथ भी सकारात्मक सम्बन्ध पाया गया है। यह देखा गया है कि जब पौधों की खुराक की मात्रा कम रहती है तब स्टे ग्रीन दानों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्टे ग्रीन से पौधे अच्छी तरह से सूखा एवं उष्ण तनाव की स्थिति में अनुकूल रहते हैं। पौधों में पर्णहरित का बने रहना इसकी एक विशेषता है जिससे पौधा लम्बे समय तक हरा रहता है एवं दानों के विकास की दिशा में एक लम्बी अवधि तक प्रकाश संश्लेषण में योगदान करता है। अधिक अनाज उपज के साथ स्टे ग्रीन की विशेषता का सकारात्मक सम्बन्ध चारा, सोयाबीन एवं मक्का में भी पाया गया है।

प्रायोगिक रुप से खेत में स्टे ग्रीन गुण का आंकलन आसानी से किया जा सकता है तथा नीचे वर्णित तालिका के अनुसार विभिन्न जीनोटाईप्स को उनमें उपस्थित पर्णहरित की अवधि के अनुसार श्रेणीबद्ध किया जाता है तथा अच्छे जीन प्रारुप का चयन आसानी से हो सकता है। यह एक आसान विधि भी है, जिसके द्वारा बहुत सारे जीनोटाईप्स का एक साथ आंकलन किया जा सकता है।

तालिकाः–1 स्टे ग्रीन आंकलन की श्रेणी

आंकलन	विवरण	स्टे ग्रीन
1	<25% पत्तियों का हरा रंग	सामान्य
2	25 - 50% पत्तियों का हरा रंग	मध्यम अवधि
3	50 - 75% पत्तियों का हरा रंग	उच्च मध्यम अवधि
4	>75 % पत्तियों का हरा रंग	उच्च अवधि

गेहूँ में एक्वापोरीन जीन की पहचान

प्रदीप शर्मा, भारती पाण्डेय, राकेश कुमार, सेंथिल कुमार मुथुसामी, माम्रुथा एच.एम. एवं रतन तिवारी
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जिसमें गेहूँ फसल को मुख्य तौर पर उगाया जाता है। दिन–प्रतिदिन पानी की कमी से गेहूँ की उपज में निरन्तर गिरावट हो रही है। अतः कम पानी के क्षेत्र में अधिक गेहूँ की उपज देने वाली किस्म का पता लगाने हेतु कुछ विशेष जीन की आवश्यकता है। इनमें से एक्वापोरीन जीन मुख्यतः एक है। ESTs, आणुसूचक की खोज और जीन के एक्सप्रेशन के विश्लेषण के लिए एक बहुत अच्छा स्रोत साबित हुआ है। गेहूँ जिनोम में एक्वापोरीन जीन के लिये यूनिजीन डेटाबेस (Ta.seq.all) में 56,943 प्रविष्टियाँ शामिल हो चुकी हैं। इस अध्ययन में, तेरह गेहूँ एक्वापोरीन जीन (AQPs) को कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण के उपयोग द्वारा खोजा गया। पहचानी गई एक्वापोरीन में से छः प्लाजमा झिल्ली की आंतरिक प्रोटीन (पीआईपी) और टीआईपी में, धान एक्वापोरीन जीन के साथ उच्च अनुक्रम समानता पाई गई। इसी प्रकार चार एनओडी–आंतरिक प्रोटीन (एनआईपी) और दो एसआईपी सदस्य को अधिक भिन्न पाया गया। सभी अनुमानित AQPs में संरक्षित ट्रांसमेमब्रेन हेलिक्स डोमेन पाया गया जोकि AQP का मुख्य हिस्सा होता है। डीएनए दृश्यों, संरचना डोमेन और वंशावली विश्लेषण के अन्तर्गत धान के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करने पर छः AQPs को TaPIP उपप्रजाति के रूप में पुष्टि की गई। जिनमें धान के पीआईपी सीडीएनए के साथ अधिकतम अनुक्रम समानता (61%-90%) पाई गयी। इसी प्रकार तुलनात्मक समानता और समूहीकरण के आधार पर, TaPIP में धान टीआईपी सीडीएनए के साथ 86%, TaSIP में एसआईपी, सीडीएनए के साथ 51%-88% जबकि TaNIP में एनआईपी सीडीएनए के साथ 73%-86% समानता पाई गई।

पहचानी गई TaPIP उपप्रजाति को आगे दो अन्य उपप्रजातियों नामित पीआईपी 1 (पीआईपी 1–1, पीआईपी 1–3) और पीआईपी 2 (पीआईपी 2–1, पीआईपी 2–2, पीआईपी 2–3, पीआईपी 2–4) में बांटा गया है। इसी तरह TaNIP को तीन उपसमूहों TaNIP1, TaNIP2, और TaNIP4 (एनआईपी 4–1, एनआईपी 1–3, एनआईपी 1–1, एनआईपी 2–1) तथा TaSIP को दो उपसमूहों TaSIP1 और TaSIP2 (एसआईपी 1–2, एसआईपी 1–1) में बांटा

गया है। धान, मक्का और एराबिडोप्सिस में AQPs जीन की बड़ी संख्या पाए जाने पर यह संभव है कि गेहूँ में और भी AQPs जीन मौजूद हो सकते हैं। पीआईपी और टीआईपी के संदर्भ में गेहूँ जिनोम में पहचाने गए एसआईपी और एनआईपी को नए सदस्यों के रूप में शामिल करने पर नया WEST मिला है जो कि आगे गेहूँ विविधता जानने के लिए पूरक होगा। पहचानी गई TaAQP को वर्गीकृत करने के उद्देश्य से अंगूर (*Vitis vinifera*), सोयाबीन (*Glycin max*), मक्का (*Zea mays*) धान (*Oryza stavia*), एराबिडोप्सिस (*Arabidopsis thaliana*) और जौ (*Hordeum vulgare*) की प्रोटीन दृश्यों के कई अनुक्रम संरेखण पर आधारित वंशावली वृक्ष को बनाया गया। वंशावली विश्लेशण करने पर पहचानी गई गेहूँ AQPs चार बड़े और अत्यधिक समान एक्वापोरीन उपप्रजातियों के समूहों में वर्गीकृत किया गया है (पीआईपी, टिप, एनआईपी और एसआईपी) (छवि–1)।

एनआईपी उपप्रजाति तीन अलग समूहों को दर्शाती है। पीआईपी उपप्रजाति दो अलग–अलग उपसमूहों में विभाजित होती है जोकि एनआईपी, टिआईपी और एसआईपी की तुलना में मामूली जोड़ीवार अनुक्रम विभिन्नता दिखाती है। सम्भवतः यह अन्य उपसमूहों की तुलना में पीआईपी की धीमी विकास दर के कारण हो सकता है। टीआईपी उपप्रजाति में AQPs, चार गेहूँ से, आठ एराबिडोप्सिस से और पाँच धान से हैं। एसआईपी समूह में दो गेहूँ से दो धान से तथा तीन एराबिडोप्सिस से वर्गीकृत हैं जोकि एक छोटी उपप्रजाति होने की पुष्टि करता है। पीआईपी सभी AQPs में सबसे बड़ी उपप्रजाति है। यह पाया गया की पीआईपी और एसआईपी निकटतम् संबंधित AQPs हैं। इस अध्ययन में AQPs के प्रत्येक उपसमूह में गेहूँ, धान और एराबिडोप्सिस में समानता के संकेत मिलते हैं।

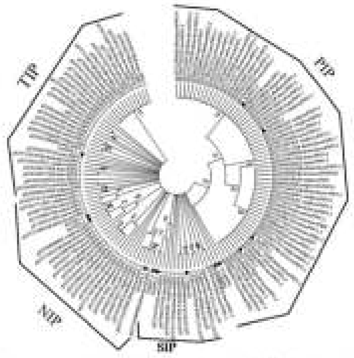

छवि 1: नए तेरह गेहूँ AQPs टीआईपी, एनआईपी और एसआईपी का तुलनात्मक वंशावली विश्लेषण।

विभिन्न उत्पादन परिस्थितियों के अनुसार जौ की प्रजातियाँ

विष्णु कुमार, जोगेन्द्र सिंह, लोकेन्द्र कुमार एवं अजित सिंह खरब
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ भारत के प्रमुख खाद्यान्नों में से एक है। विश्व की खाद्यान्न फसलों में इसका चतुर्थ स्थान है। भारत में जौ का उपयोग खाद्य, चारा एवं माल्ट के लिए किया जाता है। भारत में जौ के मुख्य उत्पादक राज्य राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश हैं। जौ की फसल से अधिक लाभ लेने हेतु यह अत्यंत आवश्यक है कि किसान भाई परिस्थिति के अनुसार सही किस्मों का उपयोग करें। जौ की नवीन किस्में, उनकी उत्पादन परिस्थितियों के आधार पर निम्नलिखित है :–

क्षेत्र	उत्पादन परिस्थिति	किस्में	अनुमोदन वर्ष
उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर क्षेत्र को छोड़कर) पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू और कठुआ जिले एवं हिमाचल प्रदेश के ऊना एवं पोंटा घाटी)	समय से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए	आर.डी. 2035 आर.डी. 2552 बी.एच. 902 बी.एच. 946	1994 1999 2010 2014
	देरी से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए	आर.डी. 2508	1997
	समय से बुवाई एवं बारानी क्षेत्र के लिए	आर.डी. 2508 आर.डी. 2624 आर.डी. 2660	1997 2005 2006
	द्विउद्देशीय जौ (चारा एवं खाद्य), समय से बुआई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए	आर.डी. 2035 आर.डी. 2552	1994 1999
	क्षारीय/लवणीय भूमि हेतु	आर.डी 2552 एन.डी.बी. 1173 आर.डी. 2794	1999 2005 2013
माल्ट जौ की किस्में	समय से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए	डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 52 आर.डी. 2668 डी.डब्ल्यू.आर.बी. 92 डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101 आर.डी. 2849 (चिन्हित)	2007 2007 2014 2015 2014

	देरी से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73	2011
		डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 64	2012
		डी.डब्ल्यू.आर.बी. 91	2013
	समय से बुवाई एवं बारानी क्षेत्र के लिए	आर.डी. 2508	1997
		के. 560	1997
		के. 603	2006
	क्षारीय/लवणीय भूमि हेतु	आर.डी. 2552	1999
		एन.बी. 1	1999
		एन.बी. 3	2001
		एन.डी.बी. 1173	2005
		आर.डी. 2794	2013
		एन.डी.बी. 1445	2014
मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान का कोटा एवं उदयपुर क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र)	समय से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए	पी.एल. 751	2007
		जे.बी. 1	2008
		आर.डी. 2715 (द्विउद्देशीय)	2008
		आर.डी. 2786	2013
		बी.एच. 959	2014
	समय से बुवाई एवं बारानी क्षेत्र के लिए	जे.बी. 58	2005

सूचना प्रौद्योगिकी का कारगर उपयोग

अनिता मीणा एवं अजय वर्मा

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

हमारे देश में कृषि का अर्थव्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। आज भी गाँवों की खुशहाली कृषि उत्पादन पर निर्भर करती है। इसी वजह से सरकार भी कृषि में सुधार के लिए नई–नई तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा दे रही है। जिससे कृषि के उत्पादन को बढ़ाकर किसानों की हालत में सुधार हो सके और उनके रहन–सहन में भी जरूरी बदलाव लाया जा सके। इसी दिशा में सरकार भी किसानों को उन्नत खेती की जानकारी देने, उपकरण व सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है एवं टेलीफोन, कम्प्यूटर, रेडियो, दूरदर्शन आदि की मदद से किसानों तक आवश्यक जानकारी जल्दी पहुँचाने का प्रयत्न कर रही है। गाँवों को विकसित करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग में दिन–प्रतिदिन सुधार हो रहा है। मौजुदा हालात इस प्रगति में धीमा बदलाव दिखाते हैं फिर भी कुछ क्षेत्रों में अच्छे परिणाम दिख रहे हैं।

मोबाईल का बढ़ता उपयोग किसानों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होता जा रहा है। किसानों को उत्पादन लागत कम करने और फसल की अच्छी कीमत दिलवाने में मोबाईल फोन खासतौर पर मदद कर रहा है। खेती के दौरान तीन ऐसी अवस्थाएं होती हैं जहां मोबाईल फोन जरूरी सूचनाओं को तुरंत किसानों तक सुनिश्चित करके उनकी आमदनी बढ़ाने में उपयोगी साबित होता है। पहली, जब किसान कौन–सी फसल बोई जाए यह विचार करते हैं और मिट्टी की अवस्था/प्रकार को देखते हुए किस तरह के बीज चुने जाएं। दूसरी, फसल की बुआई का उचित समय और बढ़ती हुई फसल की सुरक्षा के उपाय। तीसरी, फसल की बिक्री के लिए मंडी का चुनाव।

मोबाईल की लगातार बढ़ती उपयोगिता के कारण ही सरकार भी दूरसंचार ससांधनों में लगातार विकास कर रही है। भारत सरकार ने दूरसचांर के क्षेत्र के व्यापक विस्तार के लिए 10 अरब डालर मूल्य के उपकरण आदि का आयात करने की योजना बनाई है। भारत में हर साल 1.8 से 2 करोड़ नए ग्राहक जुड़ने का अनुमान है। सरकार ने वर्ष 2017 तक ग्रामीण क्षेत्रों की बढ़ती आबादी को देखते हुए भी दूरसचांर घनत्व को 35 फीसदी से बढ़ाकर 60 फीसदी और 2020 तक शत–प्रतिशत करने का ऐलान किया है। इसी तरह 2017 तक 17 करोड़ 50 लाख ग्राहकों और 2020 तक 60 करोड़ लोगों को इंटरनेट की अच्छी सुविधा देने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांति के साथ ही किसानों तक अनेक माध्यमों से सूचना पहुँच रही है। मोबाईल पर एसएमएस और वॉयस मैसेज किसानों तक जानकारी पहुँचाने की नवीनतम तकनीक है। इस तकनीक से करीब 25 लाख से अधिक किसान लाभ प्राप्त कर रहे हैं। कृषि मौसम एसएमएस 160 से कम अक्षरों में किसानों को मौसम की भविष्यवाणी और कृषि संबंधी अन्य

विषयों की जानकारी प्रदान करता है। इसकी विषय वस्तु स्थानीय स्थितियों और जरूरतों के मुताबिक होती है। यह सलाह सप्ताह में दो बार भेजी जाती है और किसान अपनी स्थानीय भाषा में इसे प्राप्त करते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग को और अधिक बढ़ाने के लिए सरकार ने देश भर में कई किसान कॉल सेंटर खोले हैं, जहाँ फोन द्वारा ही किसान अपनी समस्या का समाधान पा सकते हैं। किसान कॉल सेंटरों की शुरूआत वर्ष 2004 में हुई। आज भारत में करीब 144 किसान कॉल सेंटर देख–रेख का कार्य कर रहे हैं। किसान कॉल सेंटर विभिन्न फसलों की देख–रेख के साथ–साथ बदलते मौसम के मुताबिक होने वाली फसलों की विभिन्न बिमारियों से बचने की जानकारी भी देते रहते हैं। किसान किस तरह से खेती के जरिए अधिक से अधिक मुनाफा कमा सकता हैं, इस दिशा में किसान कॉल सेंटर काफी उपयोगी साबित हो रहे हैं। किसान बस एक फोन करके अपनी हर समस्या का समाधान पा लेता हैं। फोन की संख्या पहले से ज्यादा होने की वजह से किसान इन सेंटरों पर कॉल करने वाले किसानों की संख्या भी बढ़ी है। यही वजह है कि अब किसान कॉल सेंटरों पर अलग–अलग विषयों के विशेषज्ञों को भी तैनात किया जा रहा है ताकि किसान के हर सवाल का सही जवाब मिल सके। किसान भूमि, सिंचाई, उर्वरक आदि के प्रयोग के बारे में किसान कॉल सेंटर से जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। देश का कोई भी किसान 1551 नंबर डायल करके अपनी समस्या का हल पा सकता है। इसके लिए उसे किसी तरह के बिल का भुगतान नहीं करना पड़ता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद भी सूचना प्रौद्योगिकी के उचित उपयोग द्वारा अपनी वेबसाईट पर किसानों को उपयोगी जानकारी तत्काल उपलब्ध कराती है। वेबसाईट के माध्यम से ही विभिन्न फसलों को कितना–कितना पानी कब–कब देना है इसकी जानकारी किसानों को देती है। किस फसल के लिए कौन–सी खाद उपयोगी है, इसकी जानकारी भी किसान प्राप्त करते हैं। उपग्रह से प्राप्त होने वाली मौसम संबंधी जानकारियों द्वारा फसलों में होने वाली बिमारियों से बचाव के लिए भी समुचित जानकारी देती है। इसी दिशा में गेहूँ और जौ सम्बन्धित सभी तरह की जानकारियां किसानों को भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान सस्थान, करनाल अपनी वेबसाईट द्वारा देता है। मोबाईल पर एसएमएस द्वारा किसानों को गेहूँ और जौ की नवीनतम जानकारी पहुँचाई जाती है। इस तकनीक का पंजाब और हरियाणा के किसान लाभ प्राप्त कर रहे हैं। कृषि संबंधी अन्य विषयों की जानकारी भी एसएमएस द्वारा दी जाती है। किसानों की मदद के लिए गेहूँ और जौ में होने वाली बिमारियों की रोकथाम के लिए स्थानीय भाषा में कार्ड बनाकर किसानों को वितरित किए गए हैं। कृषि विशेषज्ञों व कृषि अधिकारियों का व्हाट्सऐप समूह बनाकर किसानों के खेतों की समस्याओं का निपटारा किया जा रहा है। कृषि एवं कृषक कल्याण मत्रांलय एप किसान पोर्टल के माध्यम से इंटरनेट आधारित सूचना देशभर के किसानों तक पहुँचा रही है।

सूचना प्रौद्योगिकी की ताकत व क्षमता को ध्यान में रखते हुए इसके अधिक से अधिक प्रयोग द्वारा किसानों तक लाभ पहुंचाने के सार्थक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

बायोफोर्टिफिकेशन : कुपोषण को खत्म करने की एक पहल

सिरिल सिंह, रिंकी एवं आशुतोष श्रीवास्तव

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

इक्कीसवीं सदी जहाँ एक तरफ अपने क्रांतिकारी परिवर्तनों एवं खोजों के लिए जानी जाती है वही दूसरी तरफ सम्पूर्ण विश्व कई बड़ी समस्याओं से जूझ रहा है, जैसे–कुपोषण, महामारी, गरीबी, संक्रमण इत्यादि। इस लेख में यह उल्लेख किया गया है कि बायोफोर्टिफिकेशन को कुपोषण के समाधान के रूप में किस प्रकार देखा जा सकता है।

कुपोषण एक ऐसी अवस्था है जब मनुष्य में उन पोषक तत्वों की कमी हो जाती है जो शरीर को सुचारू रूप से चलाने के लिए जरूरी होते हैं। इनमें सूक्ष्म पोषक तत्व, कैरोटीन, खनिज पदार्थ जैसे लोहा, जस्ता आदि प्रमुख हैं।

विश्व को कुपोषण रहित बनाने के लिए एक नई हरित क्रांति की आवश्यकता है, जो न सिर्फ फसलों में अत्यधिक पैदावार को बढ़ावा दे बल्कि फसलों में पोषक तत्वों की मात्रा एवं संचय को भी बढ़ाए।

बायोफोर्टिफिकेशन एक ऐसी तकनीक है जिसमें मृदा से खनिज पदार्थों के ग्रहण की क्षमता को बढ़ाकर फसलों में पोषक तत्वों के संचय को बढ़ाया जा सकता है। इस विधि द्वारा मनुष्य की दैनिक पोषक तत्वों की जरूरत को पूरा किया जा सकता है। बायोफोर्टिफिकेशन, बच्चों, गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए विशेष रूप से लाभकारी है क्योंकि इन्हें मुख्यतः विटामिन 'ए', आयरन तथा जिंक की अधिक मात्रा में जरूरत होती है।

बायोफोर्टिफिकेशन के तीन प्रकार हैं

1. एग्रोनोमिक बायोफोर्टिफिकेशन
2. जेनेटिक बायोफोर्टिफिकेशन
3. ट्रासंजेनिक बायोफोर्टिफिकेशन

1. एग्रोनोमिक बायोफोर्टिफिकेशन – इस विधि में खनिज उर्वरक का प्रयोग फसल में खनिज एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का संचय बढ़ाने के लिए किया जाता है। कृषि युक्त मृदा का एक बड़ा हिस्सा वैश्विक स्तर पर लोहा, जस्ता, सेलिनियम आदि खनिजों की कमी से जूझ रहा है। इस तकनीक द्वारा खनिज उर्वरक एवं गोबर की खाद के प्रयोग से मृदा में इन तत्वों की कमी को पूरा करके पौधों में इनके ग्रहण एवं संचय की मात्रा को बढ़ाया जाता है।

2. जेनेटिक बायोफोर्टिफिकेशन – इस प्रक्रिया में एक निश्चित पोषक तत्व के लिए फसलों, उदाहरण स्वरूप गेहूँ की एक उन्नत प्रजाति एवं गेहूँ की जंगली प्रजाति जिसमें उस पोषक तत्व की अधिकता पाई जाती है, का प्रजनन कराया जाता है। इस प्रक्रिया से जो संतति उत्पन्न होती है वह उन्नत प्रकार की एवं उस पोषक तत्व में उच्च मात्रा वाली होती है।

3. ट्रांसजेनिक बायोफोर्टिफिकेशन – इस तकनीक के अतंर्गत पौधों में ऐसे जीन स्थानांतरित किए जाते हैं जिनका पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों एवं खनिज के संचय में योगदान रहता है। उदाहरण स्वरूप कई शोधकार्यों में फेरिटिन नामक प्रोटीन का बीज में लोहा और जस्ता के संचय में योगदान पाया गया, ट्रांसजेनिक चावल में इस प्रोटीन का जीन स्थानांतरित करने के बाद उसमें लोहा एवं जस्ता की मात्रा सामान्य से बढ़ी हुई पाई गई। इसी तकनीक द्वारा गोल्डेन राइस (विटामिन) बायो कसावा, प्रो विटामिन–ए– केला आदि बायोफोर्टीफिकेशन द्वारा उत्पन्न फसलें कुपोषण को खत्म करने में सक्षम हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भविष्य में बायोफोर्टीफिकेशन को कुपोषण के स्थाई समाधान के रूप में देखा जा सकता है। दुनिया में तीन में से एक व्यक्ति "छिपी हुई भूख" से ग्रसित है जो कि विटामिन तथा खनिजों की कमी के कारण उत्पन्न होती है। ये पोषक तत्व न सिर्फ व्यस्कों के लिए आवश्यक हैं बल्कि बच्चों की शारीरिक वृद्धि, मानसिक विकास तथा प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

हार्वेस्ट प्लस वैश्विक स्तर पर इस समस्या को समाप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्रों, सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं तथा निजी क्षेत्र के संगठनों के साथ मिलकर कार्य कर रहा है। जस्ता युक्त चावल, आयरन युक्त सेम, विटामिन 'ए' युक्त कसावा, मक्का, आयरन युक्त बाजरा इत्यादि हार्वेस्ट प्लस कार्यक्रम की ही देन हैं जिसके कारण बांग्लादेश, कांगो, नाइजीरिया, युगांडा, जाम्बिया जैसे देशों में कुपोषण को काफी हद तक नियंत्रित किया गया है।

अधिक जौ उत्पादन हेतु भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान की नवीनतम प्रौद्योगिकियाँ

अनिल खिप्पल, अजीत सिंह खरब, दिनेश कुमार, चुनी लाल, जोगेन्द्र सिंह, लोकेन्द्र कुमार, सत्यवीर सिंह, संजीव कुमारी, विचित्र कुमार आर्य एवं योगेश कुमार
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ उत्तर भारत के मैदानी भाग की एक महत्वपूर्ण रबी फसल है। जौ का विश्व में चावल, गेहूँ एवं मक्का के बाद चौथा स्थान है। विश्व के कुल उत्पादन में जौ का योगदान 7 प्रतिशत है। वर्ष 2014–15 के दौरान भारतवर्ष में जौ को 0.673 मिलियन हैक्टेयर भूमि में लगाया गया तथा इसका उत्पादन 1.613 मिलियन टन रहा और इसकी उत्पादकता 2422 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर रही। जौ की खेती मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर एवं गुजरात में की जाती है। जौ सिमांत भूमि, लवणयुक्त/क्षारीय भूमि या पानी की कम उपलब्धता वाली भूमि में भी अच्छी पैदावार देता है। भारत में जौ को गरीब आदमी की खेती समझा जाता है क्योंकि इसमें कम निवेश की आवश्यकता होती है। इसका प्रयोग पशु आहार, माल्ट उद्योग में बीयर, व्हिस्की, उर्जा युक्त पेय आदि बनाने के लिए होता है। देश में सामान्यतः छः पंक्ति जौ की ही खेती होती है। परंतु वर्तमान में माल्ट उद्योग की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए द्वि पंक्ति जौ को भी उगाया जाने लगा है। वर्तमान समय में जौ के औषधीय गुणों के कारण उच्च रक्तचाप, गुर्दे एवं मूत्र संबंधित समस्यांओं, मधुमेह रोग एवं पाचन क्रिया में लाभ हेतु इसका खाद्य के रुप में प्रयोग काफी प्रचलित हो रहा है। जौ की बढ़ती हुई मांग को देखते हुए इसका उत्पादन बढ़ाना अति अनिवार्य है। अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ सुधार परियोजना के अंतर्गत जौ सुधार कार्यक्रमों का आयोजन पूरे देश में भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा किया जाता है। प्रयोगों का आयोजन पोषित एवं गैर पोषित केन्द्रों पर किया जाता है। इसके माध्यम से जौ की उत्पादकता एवं गुणवत्ता बढ़ाने हेतु तीन वर्षों के अनुसंधान के आधार पर निम्नलिखित तकनीकों की सिफारिश की गई है।

1. देश के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में जौ की समय पर बिजाई के लिए 6 से 15 नवंबर तक का समय उपयुक्त है। जबकि उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में बिजाई का समय 20 से 30 नवंबर तक उपयुक्त माना गया है। उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र में जौ की बिजाई के लिए 10 से 24 नवंबर का समय उपयुक्त है।
2. माल्ट जौ का अधिक उत्पादन लेने हेतु फव्वारा विधि द्वारा पहली सिंचाई बिजाई के 20 दिन बाद तदुपरांत सिंचाई 25 दिन के अंतराल पर करें।
3. खाद्य जौ का अधिक उत्पादन लेने हेतु फव्वारा विधि द्वारा पहली सिंचाई बिजाई के 20 दिन बाद तदुपरांत सिंचाई 30 दिन के अंतराल पर करें।
4. उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में जौ की गुणवत्ता व अधिक पैदावार हेतु 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टेयर प्रयोग करें।
5. उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में जौ की अधिक पैदावार के लिए 6 टन पलवार प्रति हैक्टर तथा दो सिंचाईयां करें।
6. उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र में 40 किलोग्राम फास्फोरस व 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर प्रयोग करें।
7. जौ में मंडूसी व लोमड़ घास के नियंत्रण के लिए पिनोक्साडेन (एक्सिल 5 ई. सी.) 800 से 1000 मि. ली. को 300 से 400 लीटर पानी में घोल बना कर प्रति हैक्टेयर बिजाई के 30 से 35 दिन बाद स्प्रे अवश्य करें।

8. आईसोप्रोट्यूरोन (आईसोगार्ड 75 डब्ल्यू. पी.) 1250 मि.ग्राम को 300 से 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर बिजाई के 30 से 35 दिन बाद स्प्रे करने से भी लोमड़ घास का नियंत्रण हो जाता है।
9. संकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए पिनोक्साडेन (एक्सिल 5 ई. सी.) 800 मि. ली. + कारफेन्ट्राजोन (एफीनीटि) 50 मि. ली. या पिनोक्साडेन (एक्सिल 5 ई. सी.) 800 मि. ली. + मैटसल्फ्यूरोन (एलग्रीप) 20 ग्राम को 300 से 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर बिजाई के 30 से 35 दिन बाद स्प्रे अवश्य करें।
10. पिनोक्साडेन (एक्सिल 5 ई. सी.) 800 मि. ली. को 300 से 400 लीटर पानी में घोल बना कर बिजाई के 30 से 35 दिन बाद तथा मैटसल्फ्यूरोन (एलग्रीप) 20 ग्राम को 300 से 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर पहले स्प्रे के एक सप्ताह बाद स्प्रे करने से भी संकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण होता है।
11. भूमि मे कार्बनिक पदार्थों, सूक्ष्म जीवों की सक्रियता बढ़ाने, वायु व जल कटाव से बचाव, खरपतवारों के कम जमाव, अंतकारी उष्मा तनाव से बचाव व पकाई के समय बारिश के कारण फसल को गिरने से बचाने के लिए जौ की बिजाई 6 टन प्रति हैक्टर धान के फसल अवशेषों में टरबो सीडर से करें। इस विधि से बिजाई करने पर माल्ट व खाद्य जौ में मोटे दानों का प्रतिशत बढ़ जाता है जो कि माल्ट उद्योग के लिए अनिवार्य है।
12. कपास–जौ फसल–चक्र में जौ की गुणवत्ता व उत्पादन बढ़ाने के लिए माल्ट व खाद्य जौ की कपास में रिले क्रोपिंग (बिजाई) नवंबर माह में 150 किलोग्राम प्रति हैक्टर बीज दर से करें।
13. किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए खाद्य जौ में सरसों व चने का अंतःफसलीकरण करें। खाद्य जौ की छः कतारों के साथ एक कतार सरसों या जौ की छः कतारों के साथ एक कतार चने की बिजाई करने से किसानों की आमदनी बढ़ती है और यह आमदनी अकेली जौ फसल से अधिक होती है।

डी.यू.एस. के गुणों के आधार पर जौ में संरचनात्मक वर्गीकरण

विष्णु कुमार, आर.पी.एस. वर्मा, एस.आर. विश्वकर्मा, विचित्र कुमार आर्य,
अमित कुमार, मदन लाल एवं अजीत सिंह खरब
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

करनाल तथा फैजाबाद में रबी मौसम 2012–13 एवं 2013–14 में जौ की प्रजातियों का संरचनात्मक और शस्यात्मक अध्ययन किया गया। जिनमें रबी मौसम 2012–13 में 75 प्रजातियों को करनाल तथा फैजाबाद केन्द्रों पर आर.बी.डी. डिजाईन में तीन वर्गों में लगाया गया। रबी सीजन 2013–14 में आठ नई प्रजातियों बी.एच. 885, बी.एच. 946, बी.एच.एस. 400, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 92, एच.यू.बी. 113, आर.डी. 2786, आर.डी 2794 तथा वी.एल. 118 को समाहित कर करनाल केन्द्र पर लगाया गया जबकि फैजाबाद केन्द्र पर पच्चीस प्रजातियों का एक ग्रुप दोबारा से गुणात्मक जांच के लिए उगाया गया। जिनको 1 से 9 अंकों के आधार पर 32 संरचनात्मक गुणों पर डाटा प्रोसेसिंग किया गया।

विकास के स्वभाव, फ्लैग लीफ, सीथ वैक्सिनेस, तूड़ खुरदरापन, बाली में आधार स्टरलिटी, तूड़ की उपस्थिति एवं प्रकार को छोड़कर अन्य सभी गुणों में काफी अंतर देखा गया। विकास के स्वभाव के लिए अल्फा 93, क्लीपर, आर.डी. 2668 तथा सोनू नामक चार प्रजातियाँ सेमीप्रोस्टेट जबकि शेष 79 प्रजातियों में सीधा तना पाया गया। बेसल स्टेम, कर्ण–शुष्कुल्ली का रंग, ऊपरी गांठ का रंग क्रमशः 31, 17 तथा 32 प्रजातियों में देखा गया। यह रंजकता क्रमशः अल्फा 93, डी.एल. 88, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 91, एच.बी.एल. 113, हिमानी, जे.बी. 58, एल.एस.बी. 2, एन.बी. 1, एन.बी. 2, एन.बी. 3 तथा एन.डी.बी. 1173 नामक प्रजातियों में पाई गई। जौ की अधिकांशतः प्रजातियों में से 45 प्रजातियाँ अर्द्ध सीधी फ्लैग पत्ती वाली, जबकि 57 तथा 49 प्रजातियाँ लंबी एवं चौड़ी फ्लैग पत्ती वाली देखी गई। केवल आर.डी. 2668 तथा यू.पी.बी. 1008 नामक दो प्रजातियाँ छोटी तथा नुकीली पताका पत्ती वाली पाई गई।

83 प्रजातियों में से छः पंक्ति वाली पार्श्व जौ की 71 तथा द्वि पंक्ति जौ वाली 12 प्रजातियाँ पाई गई। द्वि पंक्ति वाली प्रजातियों में से 8 प्रजातियों में पार्श्व पुष्पक विकसित थे जबकि डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73, डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 52, आर.डी. 2668 तथा यू.पी.बी. 1008 नामक प्रजातियों में अल्प विकसित पार्श्व पुष्पक पाए गए। माल्ट जौ की प्रजातियों में पताका पत्ती मोम वाली, खुरदरी बालियाँ, मध्यम पेडंकल लंबाई और मध्यम सघन बालिया पाई गई। सभी प्रजातियों में दाने के भाग के चौड़ाई संकरी मिली एवं रेचीला बाल डी.डब्ल्यू. आर. 28 प्रजाति को छोड़कर अन्य में अल्प विकसित पाए गए।

इन अध्ययन के अनुसार 59 प्रजाति की बालियों पर मोम आलेपन पाया गया और दूसरे बालियों के गुण जैसे बाली का रंग (71 प्रजातियों में मध्यम सघनता पाई गई)। सभी प्रजातियों में तूड़ लंबे तथा सामान्य पाए गए जबकि बी.एच. 393 तथा एन.डी.बी. 943 में चिकने तूड़ पाए गए। दानों के लिए 6 प्रजातियाँ छिलका रहित, 77 प्रजातियाँ पीली रंग वाली तथा 42 प्रजातियों में दाने लंबे पाए गए साथ ही 45 प्रजातियों में दाने झुर्रीदार तथा 59 प्रजातियों में संकीर्ण क्रीज चौड़ाई पाई गई।

जौ एवं गेहूँ की कपास में रिले क्रापिंग : लाभकारी तकनीक

अनिल खिप्पल, अजीत सिंह खरब, दिनेश कुमार, रमेश कुमार शर्मा, राजेन्द्र सिंह छोकर, चुनी लाल, जोगेन्द्र सिंह, लोकेन्द्र कुमार, सत्यवीर सिंह, संजीव कुमारी, विचित्र कुमार आर्य एवं योगेश कुमार
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

कपास–जौ व कपास–गेहूँ उत्तर–पश्चिमी भारत के शुष्क इलाकों की महत्वपूर्ण फसल प्रणालियों में से एक है। परंतु जौ/गेहूँ की देरी से बिजाई व कपास की दिसंबर अंत तक चुनाई के कारण इस फसल प्रणाली की उत्पादकता काफी कम हो जाती है। कपास भारत की मुख्य नकदी फसल है। इसलिए जौ/गेहूँ की समय से बिजाई के लिए कपास की जल्दी चुनाई करना बहुत मुश्किल है। जौ/गेहूँ मुख्य फसलें हैं जो देश की अर्थव्यवस्था में मुख्य भूमिका निभाती हैं। इसलिए इनकी गुणवत्ता तथा उत्पादन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। कपास की फसल में बाधा डाले बिना, जौ/गेहूँ की समय से बिजाई का एक ही समाधान है, इन फसलों की कपास में रिले क्रापिंग। अधिक पैदावार व उत्तम गुणवत्ता के लिए सही समय पर व सही बीज दर पर कपास की खड़ी फसल में ही जौ/गेहूँ की बिजाई करना अति आवश्यक है। रिले क्रापिंग उत्पादन एवं आय बढ़ाने की एक प्रभावशाली उत्पादन प्रणाली है। इस तरह की तकनीक छोटी जोत वाले कपास उत्पादकों की अधिक उत्पादन तथा आय वृद्धि में सहायता करेगी। इसके अनेक फायदे हैं जैसे:

1. फसलों में विविधता के कारण कीटों की संख्या में कमी आती है क्योंकि जब खेत में दूसरी फसलें होती हैं तो कीट असमंजस में होता है तथा उसे अपना पसंदीदा पौधा चुनने में समय लगता है।

2. पौधे में बीमारी भी कम होती है क्योंकि जब रिले फसल उगाई जाती है तो एक जैसी प्रजाति के पौधों के बीच की दूरी अधिक होती है।

3. रिले क्रापिंग में फसलें भूमि की सतह को अच्छी प्रकार से ढक लेती हैं जिससे खरपतवार को पनपने के लिए कम जगह मिलती है इसलिए खरपतवार नियंत्रण की लागत कम होती है।

4. फसल अलग–अलग उगाने की बजाय रिले क्रोपिंग में खेत का पूरा क्षेत्र अच्छी प्रकार प्रयोग होने के कारण कुल उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी होती हैं।

5. रिले क्रोपिंग जीरो टीलेज को बढ़ावा देती है जिससे मृदा स्वास्थ्य अच्छा होता है। ये मृदा की सघनता को कम करके कार्बनिक तत्व को मृदा में बनाए रखती है।

6. इस पद्धति में खेत की तैयारी में लगने वाले खर्च एवं समय की बचत होती है।

7. यह विधि गुणवत्तायुक्त बीज तैयार करने में भी अति महत्वपूर्ण है।

इन सभी पहलुओं को देखते हुए भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल के वैज्ञानिकों ने किसान सहभागिता से गेहूँ व जौ की ज्यादा गुणवत्तायुक्त पैदावार के लिए ये तकनीकें इजाद की हैं। जिसे कपास–जौ/गेहूँ आधारित फसल–चक्रों में किसान अपना रहे हैं। इसलिए किसानों को समय व धन की बचत तथा मृदा के स्वास्थ्य को सही रखने के लिए रिले क्रोपिंग अपनानी चाहिए।

विधि:

जौ/गेहूँ के बीज को 12 घंटे पानी में भिगोकर बाहर निकाल कर, कुछ समय छाया में सुखाएं ताकि खड़ी कपास की फसल में एक समान छिड़काव हो सके। बीज छिड़काव से पहले खेत में सिंचाई करें तथा सिफारिश की गई मात्रा में खाद का प्रयोग फसल अनुसार करें। खेत में पैरों से कीचड़ जैसी स्थिति पैदा करने के बाद छाया में सूखे हुए बीज का एक समान रूप से छिड़काव करें। अच्छे अंकुरण के लिए जरूरत के अनुसार एक हल्की सिंचाई भी करें। कपास में देरी से पकने वाले टिंडों से भी चुनाई करें। जब अधिकतर टिंडों से कपास चुन ली जाए तब कपास के झाड़ को खेत से निकाल दें। फुटाव के समय खाद डालें। कपास की चुनाई के बाद जौ/गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण के लिए फसलानुसार सिफारिशशुदा खरपतवारनाशी का प्रयोग करें। बाकि कृषिय गतिविधियां फसल के अनुरूप करें। जौ की रिले क्रापिंग के लिए बिजाई का उपयुक्त समय नवंबर माह तथा गेहूँ के लिए 5 से 11 नवंबर है। बीज की मात्रा 150 किलोग्राम/हैक्टर है।

जौ की गुणवता व उत्पादन में सल्फर का महत्व

अनिल खिप्पल, अजीत सिंह खरब, दिनेश कुमार, चुनी लाल, जोगेन्द्र सिंह, लोकेन्द्र कुमार, सत्यवीर सिंह, संजीव कुमारी, विचित्र कुमार आर्य एवं योगेश कुमार

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ मानव द्वारा खेती के लिए अपनाया जाने वाला सम्भवतः सबसे पहला अन्न है। जौ तथा बीयर का वर्णन पाँच हजार साल पुराने मिस्र तथा सुमेरियन लेखों में मिलता है। इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि चीन एवं भारत में भी जौ की खेती इसके बाद आरम्भ हुई। भारत में जौ को गरीब आदमी की खेती समझा जाता है क्योंकि इसमें कम निवेश की आवश्यकता होती है। साथ ही इसे अत्यन्त कठिन परिस्थितियों जैसे : बारानी, लवणीय/क्षारीय भूमि एवं कम उपजाऊ क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसका उपयोग पशु आहार, माल्ट उद्योग में बियर, व्हिस्की, उर्जायुक्त पेय आदि बनाने में होता है। देश में सामान्यतः छः पंक्ति जौ की ही खेती होती है। परंतु वर्तमान में माल्ट उद्योग की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए द्वि पंक्ति जौ को भी उगाया जाने लगा है। वर्तमान समय में जौ के औषधीय गुणों के कारण उच्च रक्तचाप, मूत्र संबंधित रोगों, मधुमेह रोग एवं पाचन क्रिया में लाभ हेतू इसका खाद्य के रुप में प्रयोग काफी प्रचलित हो रहा है। जौ की बढ़ती हुई मांग को देखते हुए इसका उत्पादन बढ़ाना अति अनिवार्य है। उत्पादन एवं गुणवता बढ़ाने में अन्य उर्वरकों के साथ साथ सल्फर का प्रयोग भी कर सकते है क्योंकि सघन खेती से भूमि में विभिन्न पोषक तत्वों की कमी आई है, जिसमें सल्फर एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। इसकी कमी से होने वाले लक्षण निम्नलिखित हैः

1. सल्फर की कमी से पौधे की बढ़वार कम होती है तथा फसल देरी से पकती है।

2. पौधे में फुटाव कम होता है तथा बालियां भी कम निकलती हैं।

3. शुरुआत में सल्फर की कमी से पूरा पौधा पीला हो जाता है तथा नत्रजन की कमी से होने वाले लक्षणों जैसा दिखता है।

4. अगर भूमि में सल्फर की मात्रा कम हो तो सल्फर पौधे में स्थिर हो जाता है। इसलिए पुरानी से नई पत्तियों में स्थानांतरित नहीं हो पाता।

5. सल्फर की कमी के लक्षण पहले नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं। ये पत्तियाँ हल्की पीली हो जाती हैं, जबकि पुरानी पत्तियाँ हरी रहती हैं।

जौ में सल्फर के प्रयोग के लाभ निम्नलिखित हैं

1. सल्फर के प्रयोग से उत्पादकता बढ़ जाती है।

2. अगर भूमि में सल्फर की कमी है तो नत्रजन का उपयोग पूरी तरह से नहीं होता।

3. सल्फर की सही मात्रा से अनाज की गुणवत्ता बढ़ती है।

4. जब नत्रजन की आपूर्ति होती है, सल्फर का प्रयोग दानों में पतलापन के प्रभाव के कारण नत्रजन की सांद्रता कम कर देता है।

5. सल्फर के प्रयोग से माल्ट की गुणवत्ता बढ़ती है।

इन सभी लाभों को देखते हुए जौ के गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन हेतु भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के लिए तीन सालों के अनुसंधान के परिणामों के आधार पर 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टर प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है। इसलिए जौ के उत्पादन व गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए अन्य उर्वरकों के साथ सल्फर का प्रयोग करना अति अनिवार्य है।

टपका सिंचाई विधि : जल बचाने का उत्तम विकल्प

अनिता मीणा, सत्यवीर सिंह, अनुज कुमार, सेंधिल आर, अजय वर्मा, अनिल खिप्पल, चरण सिंह एवं जे.के.पाण्डेय

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जल प्रकृति की अमूल्य निधि है। इसके बिना जीवन संभव नहीं है। यह सम्पदा बहुत ही सीमित मात्रा में उपलब्ध है। अतः समय की माँग है कि घरेलू और औद्योगिक क्षेत्रों के अतिरिक्त जल की खपत के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र सिंचाई में भी आधुनिक तकनीकों को अपनाकर जल का समुचित उपयोग किया जाए। सिंचाई की पुरानी तथा आधुनिक विधियों को अपनाकर काफी मात्रा में जल की बचत की जा सकती है अथवा उपलब्ध जल से अधिक बड़े क्षेत्र को सिंचित किया जा सकता है। बूंद–बूंद सिंचाई को टपका सिंचाई या ड्रिप सिंचाई विधि भी कहते हैं और इस पद्धति में जल पौधों के समीप बूंद–बूंद टपकता है जिससे पौधों की जड़ों में नमी की कमी कभी नहीं होती है। इस विधि द्वारा पौधों की जड़ का भाग गीला रहता है तथा दो पौधों के बीच का भाग सूखा रहता है। इस प्रकार पौधों की आवश्यकता के अनुसार जल की पूर्ति होती रहती है तथा जल व्यर्थ नष्ट नहीं होता है। इस प्रकार टपका/बूंद–बूंद सिंचाई द्वारा जल की विभिन्न प्रकार की पारम्परिक हानियों जैसे गहन रिसाव, अप्रवाह तथा मृदा वाष्पीकरण आदि से बचा जा

सकता है। फसल की अच्छी पैदावार के लिए उर्वरकों, कीटनाशकों तथा जल में धुलनशील अन्य रसायनों का उपयोग भी उचित एवं मितव्ययी दर से किया जा सकता है। बूंद–बूंद सिंचाई के द्वारा 30–40 प्रतिशत तक उर्वरक की बचत, 70 प्रतिशत तक जल की बचत के साथ उपज में शत–प्रतिशत वृद्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त खरपतवारों में कमी, ऊर्जा की खपत में बचत और उत्पाद की गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है। इन सभी बिन्दुओं के मध्य नजर इस विधि की तुलना सतही सिंचाई विधि से करने पर टपका सिंचाई विधि के लाभों को स्वतः ही जाना जा सकता है।

फसल में टपका विधि द्वारा सिंचाई

तालिकाः सतही सिंचाई विधि की तुलना में टपका सिंचाई के मुख्य लाभ

विवरण	टपका/बूंद –बूंद/ड्रिप सिंचाई	सतही सिंचाई
जल की बचत	70 प्रतिशत तक जल की बचत। सिंचाई कर जल सतह पर बहता है और जमीन में नीचे नहीं जाता।	सिंचाई के जल का बड़ा हिस्सा वाष्पन, रिसाव और जमीन में ज्यादा गहराई तक जाकर व्यर्थ चला जाता है।
जल उपयोग की दक्षता	80 से 90 प्रतिशत तक	30–35 प्रतिशत, क्योंकि बहुत सारा सिंचाई का जल फसल तक पहुँचने में और खेत में वितरण में व्यर्थ चला जाता है।
श्रम की बचत	ड्रिप तंत्र को लगभग प्रतिदिन आरम्भ और बन्द करने के लिए बहुत कम श्रम की आवश्यकता होती है।	इसमें प्रति सिंचाई ड्रिप विधि से ज्यादा श्रम की आवश्यकता होती है।
खरपतवार की समस्या	मिट्टी का कम हिस्सा नम होता है अतः खेत में खरपतवार भी कम होते हैं।	खरपतवार अधिक होते हैं।
खारे जल का उपयोग	जल्दी–जल्दी सिंचाई करने के कारण जड़ तंत्र में अधिक नमी रहती है और लवणों की सांद्रता हानिकारक स्तर से कम रहती है।	लवणों की सांद्रता जड़ तंत्र में बढ़ जाती है जिससे उसकी वृद्धि रूक जाती है, इसलिए खारे जल का उपयोग नहीं कर पाते हैं।
बिमारियों और कीटों की समस्या	पौधों के आसपास वायुमण्डल में नमी की सांद्रता कम रहती है इसलिए पौधों में बिमारियों और कीटों की संभावना कम रहती है।	बिमारियों और कीड़े–मकोड़ों के होने की संभावना अधिक होती है।
खराब मृदाओं में उपयुक्त	टपका (ड्रिप) सिंचाई द्वारा मृदा में जल के वितरण को मृदा की प्रकार के अनुसार नियोजित किया जा सकता है इसलिए ड्रिप सिंचाई सब प्रकार की मृदाओं में प्रयुक्त की जा सकती है।	खराब मृदाओं में सतही विधि से सिंचाई करना संभव नहीं है।
जल का नियंत्रण	सही ढंग से संभव	जल वितरण पर नियंत्रण कम होता है।
उर्वरक उपयोग की क्षमता	पोषक तत्व निस्छालन और अप्रवाह नहीं होने के कारण नष्ट नहीं होते हैं इसलिए इनके उपयोग की दक्षता बढ़ जाती है।	पोषक तत्व निस्छालन और बहाव में नष्ट हो जाते हैं इसलिए उनके उपयोग की दक्षता कम होती है।
भू–क्षरण	मिट्टी की सतह का आंशिक और नियंत्रित हिस्सा ही गीला होता है इससे भू–क्षरण नहीं होता है।	जल की धारा अधिक बड़ी होती है इसलिए भू–क्षरण की संभावना अधिक होती है।
पैदावार में बढ़ोतरी	जल्दी–जल्दी सिंचाई से मिट्टी में जल तनाव नहीं रहता है और पौधों की वृद्धि अधिक होती है। इससे पैदावार 100 प्रतिशत तक बढ़ सकती है।	असमान जल वितरण एवं सिंचाईयों में अधिक अन्तराल से मृदा में उत्पन्न जल तनाव के कारण पैदावार में कमी होती है।

तालिका: विभिन्न फसलों में सतही सिंचाई विधि की तुलना में टपका सिंचाई विधि से जल की बचत एवं पैदावार में वृद्धि

फसल	पैदावार में वृद्धि (प्रतिशत)	पानी की बचत (प्रतिशत)
अनार	20.40	50.60
आलू	20.30	40.50
गन्ना	50.60	30.50
टमाटर	80.90	60.70
फूलगोभी	60.80	30.40
बैगन	20.30	40.60
भिंडी	75.80	40.60
बंदगोभी	30.40	50.60
मिर्च	3040	60.70
लौकी	20.40	40.50

(स्रोतः पटेल एवं सहयोगी, 2002)

भारत में जौ की खेती का इतिहास व वर्तमान परिदृश्य

जे.के. पाण्डेय, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, अनिता मीणा एवं आर.के. गुप्ता
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

इस धरा पर उगाई जाने वाली सभी अन्न फसलों में जौ एक प्राचीनतम फसल है। विश्व स्तर पर गेहूँ, धान एवं मक्का के बाद चौथी महत्वपूर्ण फसल है। जौ घास के पोएसी कुल का पौधा है, जिसका वानस्पतिक नाम हॉर्डियम वल्गेयर है। जौ की दोनों प्रकार की किस्में, छः पंक्ति एवं दो पंक्ति वाली विश्व भर में उगाई जाती हैं। दोनों ही तरह के जौ डिप्लॉयड हैं तथा गुणसूत्रों की संख्या 14(2n) है। जौ की वास्तविक उत्पत्ति के स्थान का सही पता नहीं है परन्तु ऐसा माना जाता है कि इसकी उत्पत्ति मिश्र, इथियोपिया या तिब्बत में हुई है। मध्य पूर्व में अलग–अलग जगहों पर पुरातात्विक खुदाई में 5000 ईसा पूर्व के कार्बनीकृत जौ मिले जिससे पता चलता है कि लगभग 7000 ईसा पूर्व से 5000 ईसा पूर्व में जौ की खेती होती थी (हॉर्लान, 1976)। इस फसल का घरेलू उपयोग लगभग 8000 ईसा पूर्व हुआ था (जोहरी एवं हॉफ, 1993)। एक अनुमान के अनुसार 10000 ईसा पूर्व जौ की खेती की शुरुआत हुई और साथ में अनुमान के अनुसार सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो क्षेत्रों में उगाए जाने वाले 6 पंक्ति के जौ का मेसोपोटामिया में लगभग 2500 ईसा पूर्व आगमन हुआ था।

इस प्राचीनतम फसल का उत्पादन क्षेत्र पूरे विश्व में है जिसमें रुस, यूक्रेन, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, आस्ट्रेलिया, कनाडा, तुर्की, अर्जेन्टीना, ईरान, संयुक्त राज्य अमेरिका, पोलैंड, डेनमार्क, कजाकिस्तान, चेक गणराज्य, इथियोपिया, भारत, चीन, फिनलैंड, आयरलैंड, स्वीडन, अल्जीरिया एवं रोमानिया प्रमुख हैं, जिनमें रुस सबसे बड़ा उत्पादक देश है। भारत के उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश एवं बिहार प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

भारत में ज्यादातर 6 पंक्ति के जौ की खेती होती रही है। बहुत कम क्षेत्रों में 2 पंक्ति वाले जौ की खेती होती थी। चालीस–पचास वर्ष पहले तक जौ का उत्पादन क्षेत्र लगातार (खासकर 1965 के बाद) गेहूँ में सम्मिलित होने की वजह से जौ के क्षेत्र में काफी कमी आई। दूसरा, जौ में पानी की खपत कम है तथा किसी भी भूमि में उगाया जा सकता है। अतः सिंचाई में बढ़ोत्तरी से गेहूँ का एवं अन्य फसलों का क्षेत्रफल बढ़ा तथा जौ का क्षेत्रफल कम हुआ है। इसके साथ लोगों के खान–पान की आदतों में बदलाव भी एक महत्वपूर्ण कारण है जिससे इसके क्षेत्रफल में कमी आई।

भारत में जौ सुधार एवं अनुसंधान कार्य बीसवीं सदी के दूसरे–तीसरे दशक के बीच आरंभ हुआ। शुरुआत में यह कार्य भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में आरंभ हुआ और बाद में यह महसूस किया गया कि इस पर अनुसंधान कार्यकर्ताओं के बीच व्यापक तालमेल की आवश्यकता है और इसके लिए एक समन्वित योजना की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसके फलस्वरुप 1966–67 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की अखिल भारतीय समन्वित जौ सुधार परियोजना, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में प्रारंभ हुई आगे चलकर यही परियोजना 1997 में अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ सुधार परियोजना के साथ एकीकृत कर दी गई जिसे अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ एवं जौ सुधार परियोजना के नाम से जाना गया और जो आज भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में अवस्थित है। इस समय भारत में मुख्य रुप से जौ के कुल 11 प्रजनन एवं सुधार केन्द्र हैं जिनमें से सात वित्त पोषित तथा चार गैर वित पोषित केन्द्र हैं जो भारत के छः जलवायु क्षेत्रों के लिए कार्य कर रहे हैं। इसके साथ ही कुछ निजी संस्थाएं भी हैं जो जौ के अनुसंधान एवं विकास पर कार्य कर रही हैं।

शुरुआत में खाने के उद्देश्य से ही जौ की नई प्रजातियों का

विकास किया गया परन्तु आज देश में जौ का उत्पादन खाने, पशु आहार एवं माल्ट आधारित अनेकों उत्पाद बनाने के लिए किया जा रहा है। दो पंक्ति वाले जौ में माल्ट की रिकवरी एवं गुणवत्ता छः पंक्ति की तुलना में बेहतर होती है, अतः दो पंक्ति वाले जौ का उपयोग माल्ट के लिए किया जाता है। परन्तु शुरु में दो पंक्ति वाले जौ की उपज छः पक्ति जौ की तुलना में काफी कम थी जिसकी वजह से किसान इसे नहीं अपनाते थे। आज दो पंक्ति एवं छः पंक्ति वाले जौ की उत्पादन क्षमता लगभग बराबर है। भारत में परियोजना के आरंभ होने से दस वर्षों में दर्जनों नई प्रजातियों का प्रादुर्भाव हुआ। विश्व के अनेकों देशों से समय–समय पर जननद्रव्य मंगाया गया। इन प्रजातियों का उपयोग प्रायः तने की दृढ़ता, बौनेपन, माल्ट की गुणवत्ता तथा पीला रतुआ व चेपा के लिए रोग रोधकता आदि गुणों के लिए किया गया है। नई प्रजातियों के विकास की वजह से उत्पादकता में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। दो पंक्ति वाले जौ की नई किस्म जैसे कि डी.डब्ल्यू.आर.यू. बी. 52, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 91, डी.डब्ल्यू.आर. बी. 92, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101 एवं आर.डी. 2668 आदि की वजह से देश में बढ़ती माल्ट की मांग को पूरा किया जा रहा है जिससे कि किसानों को गेहूँ के बराबर मूल्य भी मिल जाता है। औद्योगिक मांग की वजह से भारत में जौ की अनुबंध खेती तेजी से उभरा है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें किसान एवं कम्पनी के बीच करार होता है। उसके आधार पर निश्चित क्षेत्र में बोई गई फसल को पूर्व सहमति के आधार पर, समय पर उत्पादन को पूर्व निर्धारित मूल्य पर कम्पनी को बेचा जाएगा तथा कम्पनी उचित खाद, बीज एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध कराएगी।

भारत में जौ के कुल उत्पादन का लगभग 20–25 प्रतिशत जौ माल्ट उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार जौ की मांग 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। कई राज्यों में माल्ट आधारित कम्पनियों ने वर्ष भर कच्चे माल की आपूर्ति के लिए किसानों से अनुबंध किया है। इसमें यूनाईटेड ब्रुअरिज लिमिटेड, मेसर्स माल्ट कम्पनी इंडिया लिमिटेड एवं सैब मिलर्स आदि प्रमुख हैं।

जौ में उपलब्ध पोषक तत्व एवं अन्य अनेकों गुणों की वजह से कार्यात्मक भोजन भी कहा जाता है। इसे मधुमेह, मानसिक तनाव एवं अन्य समस्याओं के निदान के तौर उपयोग किया जाता है। इसका चपाती, सत्तू, गर्मी में शीतल पेय, बिस्कुट एवं अन्य खाने का व्यंजन बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। पशुओं के लिए चारा एवं इसके पुआल से कार्ड बोर्ड और साथ ही मशरुम पैदा करने के लिए भी उपयोग किया जाता है। माल्ट का खाने की वस्तुएं बनाने एवं शराब व बीयर बनाने में उपयोग होता है।

निकट भविष्य में भारत में जौ एक व्यवसायिक व औद्योगिक फसल के रुप में स्थापित हो सकता है जिससे कृषकों को भी लाभ मिलेगा।

गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए जैविक कृषि एक जरुरत

दिनेश जीनगर, सीमा सेपट एवं नवल सेपट

सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली

जैविक कृषि क्या है

कृषि उत्पादन उर्वरकों, कीटनाशक व रोगनाशक जहरों का प्रयोग किए बिना करने का नाम ही जैविक कृषि है। इसे ऑर्गेनिक कृषि भी कहा जाता है। इसमें उर्वरकों की जगह पर गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, मुर्गियों की विष्ठा की खाद, चीनी मिलों के गन्ने के चूरे की खाद, हरी खाद इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। इसमें कीटनाशक व रोगनाशक दवाओं का प्रयोग अति आवश्यक परिस्थितियों में ही किया जाता है।

जैव उर्वरक

जैव उर्वरक लाभकारी सूक्ष्म जीवों के उत्पाद हैं जो पौधे को पोषक तत्वों विशेषकर नत्रजन एवं फास्फोरस की आपूर्ति कर कृषि उत्पादन में वृद्धि करते हैं। जैव उर्वरक वातावरण में मौजूद नत्रजन का जैविक स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। जैव उर्वरक प्रयोग करने में बहुत सस्ते सरल एवं वातावरण अनुरुपी होते हैं। इन जैव उर्वरकों का रासायनिक एवं जैविक संसाधनों के साथ उचित रुप से प्रयोग एवं उचित प्रबन्धन क्रियाओं को अपनाकर पौधों को पोषक तत्वों की पूर्ति की जाती है। इनके प्रयोग से फसलों की खादों की जरुरत को पूरा करने के साथ–साथ टिकाऊ उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य के अच्छे परिणाम होते हैं। इन टीकों को बीज उपचारित करने के लिए प्रयोग करते हैं ताकि पौधों की वृद्धि को प्रभावित करने के लिए उनके जड़ क्षेत्र में भारी मात्रा मे जीवाणु मौजूद रहें।

राइजोबियम टीकाः राइजोबियम का टीका दलहनी, तिलहनी एवं चारे वाली फसलों में प्रयोग किया जाता है। ये 50–100 किलोग्राम नत्रजन प्रति है. का जैविक स्थिरीकरण कर सकते हैं। राइजोबियम द्वारा उपचारित फसल का अनुपचारित के मुकाबले 25 से 30 प्रतिशत तक फसलोत्पादन बढ़ता है। राइजोबियम प्रत्येक फसल के लिए अलग–अलग होता है। अतः प्रत्येक दलहन के लिए अनुमोदित टीका ही प्रयोग करना चाहिए।

एजोटोबैक्टर टीकाः यह एक स्वतन्त्र जीवी जीवाणु है। इसका प्रयोग अनाज वाली फसलों जैसे गेहूँ, धान, मक्का, बाजरा आदि; शाकीय फसलें जैसे टमाटर, आलू, बैगन तथा प्याज आदि; नगदी फसलें जैसें कपास आदि एवं सरसों में 15 से 20 कि0 ग्रा0 नत्रजन प्रति हैक्टर की बचत करता है। एजोटोबैक्टर द्वारा उपचारित करने

पर अनुपचारित फसल के मुकाबले 10 से 20 प्रतिशत तक फसल वृद्धि होती है।

एजोस्पिरिलम टीका: यह एक सहसबन्धी जीवाणु है जो वायुमन्डलीय नत्रजन पौधे को प्रदान करता है। पौधों की जड़ एवं तना ऊतकों में मंडल बनाकर रहते हैं। इसका प्रयोग अनाज वाली फसलों जैसे ज्वार, बाजरा, रागी, मोटे अनाजों, छोटे अनाजों एवं जई आदि में किया जाता है। इसका चारे वाली फसलों पर भी लाभकारी प्रभाव देखा गया है। एजोस्पिरिलम से उपचारित करने पर लगभग 15 से 20 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर की बचत होती है तथा फसलोत्पादन एवं चारा उत्पादन में वृद्धि होती है।

फास्फोरस विलेयी जीवाणु टीका: फास्फोरस पौधों के लिये एक मुख्य पोषक तत्व है। ज्यादातर फास्फोरस भूमि के अन्दर अघुलनशील अवस्था में जमा रहता है जो पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता। इस टीके के प्रयोग से मृदा में मौजूद अघुलनशील फास्फोरस घुलनशील होकर पौधों को उपलब्ध हो जाता है। इस प्रकार फास्फोरस वाले खादों जैसे सुपरफास्फेट की मृदा में क्षमता बढ़ जाती है।

कम्पोस्ट टीका: यह टीका अनेक सूक्ष्म जीवों का मिश्रण है जो सेल्यूलोज, हेमी सेल्यूलोज एवं लिग्निन का तेजी से विघटन करने व सड़ाने के लिए उपयुक्त है। इन टीकों के प्रयोग से धान के पुआल का 6 से 9 सप्ताह के अन्दर बहुत अच्छा कम्पोस्ट बन जाता है। इसके एक पैकेट के अन्दर 500 ग्राम टीका होता है जो एक टन कृषि अवशेष को तेजी से सड़ा कर कम्पोस्ट बनाने के लिए काफी होता है।

आरबसक्यूलर माइकोराइजा न्यूट्रीलिंक टीका: माइकोराइजा एक फफूंद है जो सहजीवनता का आभारी है। माइकोराइजल हाइफी पौधे की जड़ एवं मृदा के बीच एक जाल बनाकर विभिन्न पोषक तत्वों विशेषकर फास्फोरस एवं अन्य गौण पोषक तत्व जैसे जिंक, तांबा, लोहा, कोबाल्ट तथा मॉलिब्डेनम आदि की पौधों की जरुरत को पूरा करता है। जिससे पौधे की वृद्धि अच्छी होती है और फसलोत्पादन बढ़ता है। इस टीके का खेत की मिट्टी, एफ.वाई.एम. (गोबर की खाद) एवं केंचुए की खाद में 1:20 के अनुपात में मिलाकर पौधे की पोषक जड़ों के पास लगाना चाहिए। बागवानी एवं वानिकी के लिए 200 से 250 ग्राम टीका प्रति पौधा प्रतिवर्ष जुलाई–अगस्त एवं फरवरी–मार्च महीने में पौधे की सहायक जड़ों के पास खुदाई करके डालना चाहिए।

नील हरित शैवाल टीका: धान की फसल में नील हरित के टीके का प्रयोग काफी लाभकारी होता है। यह केवल नत्रजन ही उपलब्ध नहीं करता बल्कि जैविक कार्बन एवं पादप वृद्धि करने वाले पदार्थ भी उपलब्ध करता है। एक एकड़ धान की फसल को उपचारित करने के लिए 500 ग्राम का एक पैकेट टीका काफी होता है। इस टीके को 4 या 5 किलोग्राम मिट्टी में मिलाकर धान की पौध लगाने के बाद पानी भरकर खड़े पानी में छिड़कना चाहिए। नील हरित शैवाल का टीका लगाने के बाद खेत में लगभग 10 दिनों तक पानी भरा रहना चाहिए इससे नील हरित शैवाल की अच्छी बढ़वार होती है। हरित शैवाल के प्रयोग से 20 से 30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर प्रति फसल का लाभ होता है।

अजोला टीका: अजोला एक आदर्श जैविक प्रणाली है जो उष्ण दशाओं में धान के खेत में वायुमन्डलीय नत्रजन का जैविक स्थिरीकरण करता है। अजोला 25 से 30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर प्रति फसल को योगदान करता है।

हरी खाद: सिंचित क्षेत्रों में हरी खाद का प्रयोग खाद का एक विकल्प हो सकता है तथा मृदा की कम होती उत्पादन क्षमता को बनाए रख सकते हैं। वर्ष में कम से कम एक बार हरी–खाद उगाकर तथा उसे खेत में पुनः जोतकर कार्बनिक अंश को बनाए रख सकते हैं। अवांछित पौधों की मृदा में जुताई की प्रक्रिया ही हरी–खाद के प्रयोग की उचित विधि है। इस प्रक्रिया से मृदा में आवश्यक तत्वों की आपूर्ति होती है साथ ही साथ मृदा की भौतिक अवस्था में भी लाभकारी परिवर्तन आते हैं। हरी खादों में दलहनी फसलों, वृक्षों की पत्तियां तथा खरपतवारों को मृदा में जोतकर उपयोग किया जाता है। एक दलहनी परिवार की फसल 10–25 टन हरी खाद पैदा करती है जिसके जोतने से 60–90 किग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टर की दर से प्राप्त होती है।

ढैंचा: यह धान की फसल के लिए उपयुक्त हरी खाद है। यह सूखे तथा अधिक पानी के लिए प्रतिरोधी है तथा क्षारीय मृदा के प्रभाव को कम करती है। यह फसल 40–60 दिनों में जोतने लायक हो जाती है। इस अवस्था में ढैंचा 50–60 किलोग्राम नत्रजन की भी प्रति हैक्टेयर आपूर्ति करता है। बुवाई के लिए 30–40 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए तथा इसमें दो से तीन सिंचाईयों की आवश्यकता पड़ती है।

विलायती ढैंचा: यह फसल तने में नत्रजन एकत्रित करने वाली ग्रंथियों के कारण जल भराव की स्थिति में भी उगाई जा सकती है। 50–60 दिनों के बाद जुताई करने पर विलायती ढैंचा लगभग 15–18 टन हरी खाद प्रदान करता है। जिसमें 40–50 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टर मृदा में संचित होती है। इसकी बुवाई के लिए 30–35 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

सूबबूल: यह वृक्ष रेतीली, बंजर एवं क्षारीय भूमि में पाया जाता है। अत्यधिक मात्रा में पोषक तत्व होने के कारण इस वृक्ष से लगभग 50–60 किलोग्राम हरी पत्तियों व शाखाओं का प्रयोग हरी खाद के रुप में करना लाभदायक सिद्ध होता है।

जीवाणु टीकों एवं जैव उर्वरकों के प्रयोग करने की विधि : राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम एवं फास्फोरस विलेयी टीकों का प्रयोग मुख्यतः बीजोपचार के लिए किया जाता है। बीज उपचारित करने के लिए 150 से 200 ग्राम टीका बाजार में उपलब्ध है जो एक एकड़ भूमि में प्रयोग होने वाले बीज के लिए काफी होता है। इसके लिए 5 प्रतिशत गुड़ या चीनी का घोल बनाते हैं। पानी की मात्रा इतनी होनी चाहिए जो पूरे बीज को नम कर दें। पहले इस घोल को उबालें फिर पूरी तरह ठन्डा कर लें। उसके बाद पैकेट के टीके को खोल कर ठन्डे घोल में डालकर अच्छी तरह मिलाएं। फिर इसे एक एकड़ भूमि में प्रयोग होने वाले बीज के ऊपर डालकर समान रुप से मिलाएं ताकि बीज के प्रत्येक दाने के ऊपर टीके की परत चढ़ जाए। उपचारित बीज को फैलाकर छाया में सुखाएं और तुरन्त बुआई कर दें।

सावधानियां

- प्रत्येक फसल के लिए अनुमोदित टीके का प्रयोग उसकी वैध तिथि तक करें।
- टीके के पैकेट एवं उपचारित बीज को सूर्य के सीधे प्रकाश, रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों से बचाएं ।
- ठन्डी जगह में भन्डारण करें।

भारत के महत्वपूर्ण गेहूँ उत्पादक राज्यों के लिए अनुमोदित नई किस्में

अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, सेंथिल आर, अनिता मीणा एवं जे.के. पाण्डेय
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ भारत की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल है। कुल उत्पादन का 90% से अधिक उत्पादन छः राज्यों; उत्तर प्रदेश (28%), पंजाब (18%), मध्य प्रदेश (16%), हरियाणा (13%), राजस्थान (11%) तथा बिहार (5%) द्वारा किया जाता है। आज भी पंजाब एवं हरियाणा को छोड़कर बाकी सभी राज्यों में बीज विस्थापन व किस्म विस्थापन की दर काफी कम है। यही वजह है कि इन राज्यों की उपज काफी कम है। गेहूँ की राष्ट्रीय औसत उपज से ऊपर आज भी भारत के मात्र तीन राज्य; पंजाब, हरियाणा व राजस्थान है। अतः अन्य राज्यों में नई किस्मों की जानकारी, बीज की उपलब्धता तथा राज्य कृषि विभाग द्वारा संस्तुत सिफारिशों को अपनाने की नितांत आवश्यकता है। इस लेख के माध्यम से भारत के प्रमुख गेहूँ उत्पादक राज्यों के लिए अनुमोदित किस्में, उनकी औसत उपज, उत्पादन की दशा एवं अनुमोदन वर्ष आदि की जानकारी दी जा रही है जो किसानों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगी।

राज्य	उत्पादन परिस्थिति	किस्म/प्रजाति	वर्ष	औसत उपज (कु./है.)
पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान (कोटा व उदयपुर क्षेत्र को छोड़कर)	सिंचित, समय से बुआई	डी.बी.डब्ल्यू. 88	2014	54.2
	सिंचित, समय से बुआई	एच.डी. 3086	2014	54.6
	सिंचित, समय से बुआई	डब्ल्यू.एच. 1105	2013	52.5
	सिंचित, समय से बुआई	एच.डी. 2967	2011	50.4
	सिंचित, समय से बुआई	डी.पी.डब्ल्यू. 621–50	2011	51.3
	सिंचित, समय से बुआई	पी.बी.डब्ल्यू. 550	2008	47.7
	सिंचित, समय से बुआई	डी.बी.डब्ल्यू. 17	2007	49.0
	सिंचित, समय से बुआई	डब्ल्यू.एच.डी. 943 (ड्यूरम)	2011	48.1
	सिंचित, समय से बुआई	पी.डी.डब्ल्यू. 314 (ड्यूरम)	2010	50.3
	सिंचित, देर से बुआई	डी.बी.डब्ल्यू. 90	2014	42.7
	सिंचित, देर से बुआई	डब्ल्यू.एच. 1124	2014	42.7
	सिंचित, देर से बुआई	डी.बी.डब्ल्यू. 71	2013	42.7
	सिंचित, देर से बुआई	एच.डी. 3059	2013	42.5
	सिंचित, देर से बुआई	पी.बी.डब्ल्यू. 590	2009	42.2
	सिंचित, देर से बुआई	डब्ल्यू.एच. 1021	2008	39.1
	सिंचित, देर से बुआई	**डी.बी.डब्ल्यू. 16**	**2006**	**38.2**

बिहार, झारखंड एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश	सिंचित, समय से बुआई	एन.डब्ल्यू. 5054	2014	47.0
	सिंचित, समय से बुआई	के. 1006	2014	47.0
	सिंचित, समय से बुआई	एच.डी. 2967	2014	45.1
	सिंचित, समय से बुआई	डी.बी.डब्ल्यू. 39	2010	44.6
	सिंचित, समय से बुआई	सी.बी.डब्ल्यू. 38	2009	44.4
	सिंचित, समय से बुआई	राज. 4120	2009	47.5
	सिंचित, समय से बुआई	के. 0307	2007	45.6
	सिंचित, देर से बुआई	डी.बी.डब्ल्यू. 107	2015	41.3
	सिंचित, देर से बुआई	एच.डी. 3118	2015	41.7
	सिंचित, देर से बुआई	एच.डी. 2985	2011	37.7
	सिंचित, देर से बुआई	एच.आई. 1563	2011	37.6
	सिंचित, देर से बुआई	एन.डब्ल्यू. 2036	2003	42.5
	सिंचित, देर से बुआई	डी.बी.डब्ल्यू. 14	2003	42.7
	सिंचित, देर से बुआई	एच.डी. 2643	1997	36.4
	वर्षा आधारित, समय से बुआई	एच.डी. 2888	2006	22.5
	वर्षा आधारित, समय से बुआई	एम.ए.सी.एस. 6145	2002	25.5
	वर्षा आधारित, समय से बुआई	के. 8027	1989	25.1
	वर्षा आधारित, समय से बुआई	सी. 306	1965	26.0
मध्य प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़ एवं राजस्थान का कोटा एवं उदयपुर क्षेत्र	सिंचित, समय से बुआई	डब्ल्यू.एच. 1142	2014	48.1
	सिंचित, समय से बुआई	एच.आई. 1544	2008	51.4
	सिंचित, समय से बुआई	जी.डब्ल्यू. 366	2007	51.7
	सिंचित, समय से बुआई	जी.डब्ल्यू. 322	2002	46.9
	सिंचित, समय से बुआई	जी.डब्ल्यू. 273	1998	44.7
	सिंचित, समय से बुआई	एच.आई. 8737 (ड्यूरम)	2014	53.4
	सिंचित, समय से बुआई	एच.आई. 8713 (ड्यूरम)	2013	52.3
	सिंचित, समय से बुआई	एम.पी.ओ. 1215 (ड्यूरम)	2010	45.1
	सिंचित, समय से बुआई	एच.आई. 8498 (ड्यूरम)	1999	44.3
	सिंचित, देर से बुआई	एम.पी. 336	2013	44.7
	सिंचित, देर से बुआई	एम.पी. 1203	2009	41.2
	सिंचित, देर से बुआई	एच.डी. 2932	2008	42.2
	सिंचित, देर से बुआई	एच.डी. 2864	2005	41.7
	समय से बुआई, सीमित सिंचाई	डी.बी.डब्ल्यू. 110	2015	39.2
	समय से बुआई, वर्षा आधारित/सीमित सिंचाई	एम.पी. 3288	2011	23.2 (वर्षा आधारित) 35.1 (सीमित सिंचाई)
	समय से बुआई, सीमित सिंचाई	एम.पी. 3173	2009	25.7
	समय से बुआई, सीमित सिंचाई	एच.आई. 1531	2005	23.6 (वर्षा आधारित) 26.6 (सीमित सिंचाई)
	वर्षा आधारित, समय से बुआई	एच.आई. 1500	2003	16.1
	वर्षा आधारित, समय से बुआई	एच.डी. 4672 (ड्यूरम)	2000	15.1

MISSION
Eminent Personalities
Global Wheat Scenario
Crop Improvement

डॉ. त्रिलोचन महापात्र, सचिव, कृषि अनुसंधान व शिक्षा विभाग एवं महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा संस्थान का पहला दौरा दिनांक 14 अप्रैल 2016 को किया गया।

लेखकों के लिए दिशा-निर्देश

गेहूँ एवं जौ संदेश में छपने हेतु लोकप्रिय लेख साफ-साफ हस्तलिखित या डबल स्पेसिंग में टाईप किए हुए (तालिका, आकृति, फोटोग्राफ सहित) दो पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिएं। लेख में लेखक/लेखकों का पूरा नाम, पता व ई-मेल अवश्य लिखें। लेखकों से निवेदन है कि वे अपने लोकप्रिय लेख 31 मई तक पहले अंक (जनवरी-जून) के लिए एवं 30 नवम्बर तक दूसरे अंक (जुलाई-दिसम्बर) के लिए भेजें। कृपया एक लेख में 4-5 से अधिक लेखकों का नाम न दें।

सम्पादक मंडल
सत्यवीर सिंह, अनुज कुमार, अनिता मीणा, आर.के. गुप्ता एवं जी.पी. सिंह
तकनीकी सहायता : जे.के.पाण्डेय
छायाचित्र : राजेन्द्र कुमार शर्मा

बुक पोस्ट
छः माही मुद्रित सामग्री

सेवा में,
....
....
....
....

प्रेषक
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
पोस्ट बॉक्स 158, अग्रसेन मार्ग,
करनाल - 132 001 (हरियाणा), भारत

निदेशक, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रित प्रति - 1000

DESIGN STUDIO
98120 53552